निवेदन.

पाठक गण ! जैन साहित्य संसारमें " वस्त्र वर्ण सिद्धी " नामके विषयमें पुस्तक की वृद्धि हुई है । यह विषय न तो औपदेशिक है, न सामाजिक है, यह तो केवल साधु धर्म और जिसमें भी मुख्यतया वस्त्र वर्ण विषयक विवरणके शास्त्रोक्त प्रमाणोंका चर्चात्मक लेख है । इस संसारकी कठिन उपाधियोंसे निवृत्त होकर जिन महानुभावोंने निवृत्तिमार्ग अंगीकार किया है, उनमें से किसीको " वस्त्रवर्ण " विषयक शंका उपस्थित हुइ हो, उसका इस पुस्तकमें संपूर्ण समाधान है ।

वर्तमानमें मनुष्योंकी बहुधा ऐसी प्रवर्तीयें दृष्टी गत होती हैं, कि जिनके प्रभावसे मनुष्यों मे चंचलता, अहंभाव उत्पन्न होकर भवभ्रमणकी तर्फ विशेष प्रवर्तीयें हो जाती हैं, और महान अगाध प्रवाहमें गीरनेवाले प्राणी अज्ञान-दुर्ज्ञानके प्रतापसे शीव सुखके अधिकारी नहीं हो सक्ते । क्योंकि उनका हृदय विक्षिप्त होकर भव भ्रमणमें गीर जाता है । आप जानते होंगे कि थोडे समय पूर्व वस्त्रवर्ण विषय चर्चाका जन्म रतलाम (मालवा) नगरमें हुवा था और वह इस भाषा-शैलीमें प्रतिपादित था के जिसको महानुभाव-ज्ञानी-साक्षर निंदात्मक दृष्टी से देखते थे । तबसे ही मेरे मनमें यह भावना उत्पन्न हुइ थी, के इस विषयको सरल बनानेकी कोशीस करना चाहिये । तद्नुसार शास्त्र वेत्ता मुनिवर्गादिसे विज्ञप्ति कीगइ । और जिन मुनि महाराजाओंने इस विषयका साहित्य संपादन किया है,

उनका उपकार मानता हूं। और विशेष प्रकारसे श्रीमान् आगमोद्धारक आचार्य वर्य श्री सागरानंद सूरीश्वरजी महाराजके शिष्य श्रीमुनिवर्य माणिक्य-सागरजी महाराजको सहस्र धन्य वाद है कि जिन्होंने इस कठिन विषयके विशेष प्रमाण मुझे सरल रीत्यानुसार समझाये और मूल पाठोंका भावार्थ लिखाया है। अलबत्ता इस ग्रंथ में मूल पाठ पर से शब्दानुवाद नहीं किया गया है। क्योंकि मैं क्षुद्रात्मा इस विषयका अनधिकारी हूं। अतः पाठकोंके समक्ष समझमें आजावें इस तरह भावार्थ मात्रमें विक्षेप न हो यही मंतव्य मुख्यतया रख कर केवल विषय स्पष्टकी तर्फ ध्यान रख कर भाषा लिखी गई है। इस विषयकी भाषामें, भाषा सौंदर्य-लालित्य-किंवा भावग्राही शब्दों का अभाव है। तदपि शंका समाधान तो योग्य प्रमाण से हो ही जावेगा। तथापि इस विषयमें त्रुटिएं रह जाना कोइ बड़ी बात नहीं है। क्योंकि मनुष्य भूल का पात्र होता है। और संभव है कि साक्षरों की दृष्टीमें वे त्रुटीयें तैर आवें। किन्तु इतना स्मरण रहे कि भाषा में त्रुटीयां नहीं है। मेरा मुख्य आशय यह है कि समाजमें निरर्थक वितंडावादका जन्म न हो। और मुद्रण करना व संशोधन आदिकी जो जो भूलें हों उनके लिये क्षंतव्य. इसके सिवाय और कोइ विशेष ज्ञातव्य विषय उसके लिये साक्षर वर्ग सूचित करें ताकि नवीन संस्करणके समय उपयोग किया जाय। शुभमस्तु।

संघ का सेवक,

चंदनमल नागोरी.

विनंती.

पाठक महोदय ! हमारे मंडलने पुस्तक करानेका साहस उठाया है उसके फल स्वरूप यह पुष्प प्रकाशित करानेका सौभाग्य प्राप्त हुवा है। आपके कर-कमलोंमे है. आशा है कि समाज हमारे को अपनाये जांयगे शुभम्.

आपके शुभ
श्रीमद् गुण प्रसारक मित्र मंडल के.

व्यापिक कर्में नियाम करती है। जिनके प्रभाव से मनुष्य को संगीत चित्र लेखन, शिल्प, कला कौशल्य, वक्तव्य किंवा मुद्रितादि प्राप्त होती है, और इस अमूल्य एवं महत्व के साधनोंमें लेखनी का साधन बहुधा उत्तम और ऊंची कक्षामें लेजाने के ... गया है। समस्त देशों के साहित्योपासक व्यक्ति, नेताओं की तर्फ दृष्टि विस्तरित कर देखा जाय तो ... प्रभाव से ही उच्चतम श्रेणी पर आरूढ हो, जन बने हैं। उसको यदि अन्य स्वरूपमें कथन किया जाय कौशल्य का मुख्य तत्त्व " विचार श्रेणीकी प्रबलता . और इस श्रेणी को प्रदीप्त की जाय तो जिन मनुष्य विजय करना चाहता है, वही परिणाम उस ... लिये निकटवर्ती उपस्थित होना असंभव नहीं है। ... का कथन इस तरह करना उत्तम होता है कि, विचारज्ञों के विचार से अपने विचारों की ... अधिक विद्वान द्वारा निर्णय कराना यही म.गे ...

विचार श्रेणी के दो भेद मानना भी ... व्यवहारिक दृष्टि से, द्वितीय निश्चियात्मक दृष्टि से प्रथम भेद को पहले विधि पुरःसर जानना चाहिये. ... सत्ता चतुर्दश गुणस्थान तक अपना वर्ष बतानी है आदरणीय है। द्वितीय भेद का विवरण आगोगम्य है.

भूतकालमें भी महर्षिगण विचार श्रेणी को

किया करते थे, उदाहरण है कि, श्रीमान सिद्धसेन दिवाकर महाराज का कथन था कि " केवलज्ञान व केवलदर्शन एक ही है " और श्रीमान जिनभद्र गणी महाराज कहते थे कि नहीं-केवलज्ञान, केवल-दर्शन दो हैं। इस तरह परस्पर प्ररूपणामें विरोध था किन्तु आपसमें वैमनस्य भाव उत्पन्न नहीं होता, एसी भवना प्रवर्ती से विचार क्षेत्र की वृद्धि की जाय तो अति हितकर होती है.

पाठकगण ! विचार विस्तारित करने का व लोकमत सुशिक्षित बनाने का कार्य उत्तम है, तदपि विचार क्षेत्रको एसा विषमय न बना दिया जाय कि जिससे शासनचक्रमें वैमनस्य पैदा होकर हानि पहुंचे.

मेरी यह भावना नहीं है कि हठवादियों की तरह मैं मेरा ही मंतव्य सिद्ध करने को कपोल कल्पित उपाय की योजना करूं। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि जैन जनता बुद्धिवाद के जमानेमें जड़-वाद की तर्फ न झुक जाय, क्योंकि शास्त्र विरोधी नहीं हैं, न शास्त्रों में विरोध है। विरोध तो केवल अपनी अहंमान्यता पर ही आधार रखता है, और यही भाव मनुष्य जीवन को बिगाड देता है। यह भाव एसा है कि किंचित किंचित मात्र कथन पर पर्वत जितना स्वरूप खड़ा करने वाले निंदक बनते हैं। कि जिसको बुधिमान देखते नहीं हैं किन्तु तिरस्कारक दृष्टि से देखते हैं. क्योंकि मनुष्य जो मद में आकर यद्वा तद्वा का उपयोग कर कराके आनंदित होता है, वह मानव प्रकृति से भिन्न है। और भिन्नापेक्षा कथन होनेसे विकल्प पैदा करता है, विकल्प से विकल्पता उत्पन्न होती है विकल्पता से

उपयोग हीन बनते हैं और वह अपने पद से च्युत होजाते हैं. और होना ही चाहिये. क्योंकि मद, अहंता, अभिमान, यह एसा भाव है कि जब मनुष्य के शरीरमें उत्पन्न होता है तब वह अपने उच्च पद से भ्रष्ट होकर निकृष्ट स्थान की स्थिति पैदा करता है। सब ही कार्य के साथ उसका फल, प्रयत्न के साथमें परिणाम, आघात के सामने प्रत्याघात, और भावना के सामने उसका बदला सामने ही खड़ा होता है। अतएव इन उपरोक्त दोषों से दूषित न बनकर विचार क्षेत्रमें प्रवेश किया जाय तो विशेष हितकर है।

इतनी दीर्घ और मन-मोहक भूमिका लिखने का यही हेतु है कि विचार ही मनुष्य के अधोगति व उर्ध्वगति लेजानेमें सहायक है। अतएव क्षुद्रात्मा को कहीं एसा भाव उत्पन्न न होजाय, कि मेरा ही मंतव्य प्रमाणिक और ठीक है अन्य का नहीं। अस्तु.

निवेदक,
चंदनमल नागोरी,
मु. छोटी सादड़ी (मेवाड़)

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

वस्त्र वर्ण सिद्धी.

मालवा के अंतर्गत महान प्रभावशाली माहाराजा विक्रमादित्य की पुन्य प्रपूर्ण भूमि उज्जयनी नगरी के समीप प्रख्यात शहर रतलाम (रत्नपुरी) में वस्त्र वर्ण निर्णय सम्बंधी चर्चा का जन्म हुवा, और वह एसे स्वरुपमें निर्बाध करने लगा कि जो जैन अजैन साक्षरों की दृष्टीमें प्रणास्पद होगया, यहां तक कि प्रतिष्ठित राज्य कर्मचारियों ने प्रजा के हितार्थ इस धार्मिक-चरण करणानुयोग चर्चा को वितंडावाद समाज बंद करने की चेष्टा की, आश्चर्य है! महावृत के शोभास्पद वस्त्र वर्ण विवाद का अमानुषी स्वरूप?

मैंने यह विचार किया कि पुरातन प्रवृती के प्रमाण क्या आगमों में नही है? कि जिससे सांप्रत समाज में एसी चर्चा का जन्म हुवा? तो यही परिणाम आया कि प्रमाण तो विशेष रुपमें प्रति पादित हैं किन्तु मान्यता को दृढ करने के साधन प्रायः लभ्य नहीं है। तभी हम की खोजना में साहित्य प्रेमी समाज मग्न है, अगर सोचा जायतो श्रीमान् अनुयोगाचार्य सत्य विजयजी आदि शासन प्रेमी महानुभावों ने वस्त्र वर्ण परिवर्तन किया है, और समाज ने शास्त्रोक्त समग्र समाज हित के लिये तद् विषयक प्रवर्ती की, अब

जिन महानुभावों को " श्वेतवस्त्र " नाम मात्र से ही अपना मंतव्य प्रबल करना है, उन को परावर्त्तित वर्णवालों से विरोद्ध करना पड़ता है। इस विरोद्धभाव की शांति के लिये शास्त्रों के प्रमाण दिये जांय तभी विरुद्धता की आहुती होगी वरना अशांति रहना संभव है। अतएव शास्त्रों के ज्ञाता मुनिवर्य, आचार्यवर्य, किंवा अन्य साक्षरों की सेवामें लिखा गया कि क्या इस विषय के प्रमाण मुद्रित कराने में हानि है? उत्तर यही मिला कि भवभीरु आत्मा को शांति के लिये शास्त्रों के पाठ बताना लाभदाइ हैं, अतएव यथा शक्ति प्रयत्न करने से तद् विषयक जो साहित्य प्राप्त हुवा है उस को जन समाज के समक्ष प्रगट करना योग्य है।

प्रमाण १

आचाराङ्ग, श्रुतस्कन्ध दूसरा, प्रथम चूलिका, वस्त्रैषणाध्ययन पांचमा, प्रथम उद्देपे में पाठ है कि—

> से जं पुण वत्थं जाणिज्जा–जंगियं वा भंगियं वा साणयं वा पोत्तगं वा खोमियं वा तूलकडं वा तहप्पगारं वत्थं वा धारेज्जा (सू० ३६४)

भावार्थ–इस सूत्र में (जंगिय) उंट के रोम से उत्पन्न होने वाला वस्त्र (भंगिक) जो विकलेन्द्रिय की लार से पैदा होता है। (साणय) सण से जो वस्त्र बनाये जाते हैं जिन्हें सणीया कहते हैं

इसी तरह मे वल्कल से बना हुवा, ताड आदि पत्रों के
ण से बना हुवा, कपास से पैदा होने वाला और अर्कादि के
मे उत्पन्न हो, वह वस्त्र धारण करने की आज्ञा दी । अब
पक्ष व्यक्ति क्या ऊंट की रोमराय, या सण की स्वयं स्थिती को
त बना सकेंगे? कदापि नही, तो यही सारांश निकलता है कि
त के सिवाय भी वस्त्र कल्पनीय है। इसी प्रमाण के हेतु भूत
टीकाकार भी लिखते हैं कि—

प्रमाण २

"स भिक्षुरभिकांक्षेद् वस्त्रमन्वेष्टुं, तत्र यत्पुनरेवंभूतं वस्त्रं जानीयात्, तद्यथा-जंगियंति, जङ्गमोष्ट्राद्यूर्णानिष्पन्नं, 'तथा' भंगियंति नानाभङ्गिकविकलेन्द्रियलालानिष्पन्नं, तथा 'साणयं' ति सणवल्कलनिष्पन्नं 'पोत्तगं' ति ताड्यादिपत्रसंघातनिष्पन्नं 'खोमियंति' कार्पासिकं 'तूलकडं' ति अर्कादितूलनिष्पन्नम्, एवं तथाप्रकार मन्यदपि वस्त्रं धारयेदित्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ (इति)

श्रीमान् टीकाकार भगवन आज्ञा करते हैं कि वस्त्र लेनेकी इच्छा वाला साधु तलाश करे और उसको ऊंटादि के रोमराय, विकलेन्द्रिय लार, सण वल्कल, ताड्य पत्र, कर्पास, अर्कादि से बना हुवा वस्त्र मालूम हो जाय किंवा वैसाही यदि दुसरा वस्त्र है तो

उसे धारण करसक्ता है। एसी स्पष्ट आज्ञा दी है। और तद् विषयक- श्रीमान् टीकाकार शिलङ्काचार्यजी माहाराज भी स्पष्ट फरमाते हैं.

प्रमाण ३

आचारांग, दूसरा श्रुतस्कंध, प्रथम चूलिका, पांचवा वस्त्रैषणा, अध्ययन, प्रथम उद्देषा.

से भि० से जं० असंजए भिक्खुपडियाए कीयं वा धोयं वा रत्तं वा घट्ठं वा मट्ठं वा संपधूमियंवा तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतर कडं जाव नो०, अह पु० पुरिसं० जाव पडिगाहिज्जा (सू० ३६७

भावार्थ–जो वस्त्र साधुके लिये मौल्य लिया है या, धो लाया है रंग परिवर्तन किया–रंगाया गया है, या धूपाया हो अथवा घीसकर मट्ठार कर तैयार किया हो, एसा वस्त्र दूसरे के उपयोग में आये विना साधु पुरुष नहीं लेवें। कैसी अनुपम आज्ञा है, याने रंगाहुवा वस्त्र लेवे, अब और प्रमाण क्या चाहिये। इसी सूत्र की टीका में टीकाकार श्रीमान् शिलंकाचार्य माहाराज भी फरमाते हैं कि—

प्रमाण ४

'साधुप्रतिज्ञया, साधुमुद्दिश्य गृहस्थेन क्रीतधौतादिकं वस्त्रमपुरुषान्तर कृतं न प्रतिगृह्णीयात्। पुरुषान्तरस्वीकृतं तुगृह्णीयादिति"

भावार्थ–साधु के उद्देश्यसे विक्रय लिया हुवा वस्त्र किंवा धोकर रंगवाकर, या और विशेषता प्राप्त कर साधु माहाराज प्रति लाभने के निमित्तही सब तैयारियां की हो ऐसा वस्त्र नहीं लेनेका कल्प है, और वह दुसरे पुरुष के उपयोग में आयाहो तो लेना कल्पनीय है। कहा है कि—

प्रमाण ५

"से भि० नो वण्णमंताइ वत्थाइं विवण्णाइं करेज्जा"

भावार्थ–इस सूत्र का यह है कि साधु अच्छे वर्ण याने रंग वाले वस्त्रका वर्ण न बिगाडे इसपर टीकाकार कहते हैं कि—

प्रमाण ६

स भिक्षुः वर्णवंति वस्त्राणि चौरादिभयान् नो विगत-वर्णानि कुर्यात्.

भावार्थ–प्रभुकी आज्ञा पालक साधु वस्त्र वर्ण को तस्करादि भय से परिवर्तन न करे, प्रथम तो ऐसे वस्त्रही नहीं लेना, यदि ले लिया है तो वर्ण परिवर्तन नहीं करना, इस कथन से सिद्ध होता है कि अच्छे वर्ण वाले वस्त्र साधु ग्रहण करें किन्तु रंग न पलटे, ऐसी शास्त्रकार माहाराज की आज्ञा सूत्रों में है, साधुओं के लिये कथन करनेमें सूत्रकार व टीकाकारों में कमी नहीं की है. साधु

शब्दही इतनी महत्त्वता वाला है, कि सुनते ही भव्यात्मा को प्रेम उत्पन्न हो जाता है, और साधु, यनि निग्रन्थ, मुनि, संयमि, संत, आदि एकार्थी पर्याय वाचक शब्द हैं, और एसेही क्रिया पात्रों को आज्ञा पालन करने में शंका नही होती, बाकी यूं तो साधु संज्ञाके आचार पांच प्रकार बताये हैं. उनका विवरण प्रसंगोपात करना हितकर है।

प्रथम पुलाक, द्वितीय निग्रन्थ, त्रतिय स्नातक, चतुर्थ बकुश, और पंचम कुशील, इन पांच प्रकार के साधुओं में प्रथम, द्वितीय, और त्रतिय, प्रकार के साधु तो इस कालमें इधर होते ही नही हैं, अब रहे दो भेद, बकुश, और कुशील. यह दोनों, शासनमें विद्यमान रहेंगे। और इनही में से शासन रक्षक, और धुरंधर पंडित होंगे. इन दो प्रकार के साधुओं में से बकुश के लिये तत्वार्थ भाष्यकार श्रीमान् उमास्वाति वाचकजी महाराज क्या लिखते हैं देखिये—

प्रमाण ७

" बकुशो द्विविधः- उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्च, तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रमहाधनोपकरणपरिग्रहयुक्तो बहुविशेषोपकरणाकांक्षायुक्तो नित्यं तत्प्रति-संस्कारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति, शरीराभिष्वक्तचित्तो विभूषार्थं तत्प्रतिसंस्कारसेवी शरीरबकुशः।

भावार्थ, श्रीमान वाचकजी माहाराज का कथन है कि बकुश दो प्रकार के होते हैं, (१) उपकरण बकुश, और (२) शरीर बकुश, इन दो तरह के बकुश में उपकरण बकुश उसको कहते हैं कि, जिसको उपकरणादि विविध सामग्री में विशेष रागहो और वह अधिक मौल्यवान वस्तु ग्रहण करने की चेष्टा किया करे। किया करे इतना ही नहीं बहुधा विशेष और विशिष्ट प्रकार के उपकरण या संग्रह कर उनके संस्कार में याने समेटना, बांधना, आदि क्रिमिया में ही दत्तचित रहे एसे साधु व्यक्ति को उपकरण बकुश कहते हैं, और देहपर ममत्व किंवा राग रखने वाला, विशेष प्रकार शुश्रुषा रखता हो, शरीरकी कोमलता बनाकर तथा प्रकारकी योजना कायम रखनेको सन् पोषक पदार्थों द्वारा शरीर को बनाया करे एसे साधुओं को शरीर बकुश कहते हैं, एसा तत्त्वार्थ भष्य में सारांश है, और सच है, क्योंकि साधुओं को अपने आत्महित के लिये शरीर परसे मुर्च्छा त्याग करना लाभदाइ होता है, परिग्रहादि सामग्री भी विशेष रखने की आज्ञा नहीं है, मिथ्या वचन का तो निरंतर प्रतिबंध होता है। इस के अतिरिक्त बलात्कार से लिया हुवा मकान में या मालीक मकान की आज्ञा विना पंच महाव्रत धारी गण उस आवास में निवास नही कर सके, स्त्रियादि के परिचय वाले घरमें भी, साधु नही ठहर सके, गृहस्थ आदिको रात्रिमें दीवा-रोशनी, की सहायता से पाठ देना या स्वयं अध्ययन करना मना है, स्त्रियों के साथ प्रतिक्रमण करने की भी आज्ञा सूत्रकार भगवन की नहीं है। इतनी

ों में यदि साधु दूषित बनजावें तो बकुश पना नहीं रहता, किंतु
र वस्त्र ग्रहण करने में रंगदार वस्त्र धारण करने में बकुश पना
ता है, ऐसा इस प्रमाण से सिद्ध है। आगे इसी भाष्य
टीका में श्रीमान हरिभद्रसूरिश्वरजी महाराज फरमाते हैं कि—

प्रमाण ८

बकुशो द्विविधः, उपकरणशरीरभेदात्, तयोरुपकरण-बकुश उपकरणे वस्त्रपात्रादौ अभिष्वक्तचित्तः- प्रतिबद्ध-स्नेहः समुपजाततोषः विविध देशभेदेन वस्त्रं पौण्ड्रवर्धनक-काशीकुलकादि पात्रमपि पुरिकागन्धारकप्रतिग्रहकादि विचित्रं "रक्तपीतशीतबिन्दु" पट्टकादिप्रचितं महा-धनं महामूल्यं एवमादिना उपकरणेन युक्तो ममेदं अह-मस्य स्वामीत्युपजातमूर्च्छः पर्याप्तोपकरणोऽपि भूयो बहुविशेषोपकरणकांक्षायुक्तो, बहुः विशेषो यत्र मृदुदृढ-लक्षणघन निचित "रुचिरवर्णादिः" तादृशोपकरणे लब्धव्ये जातकांक्षो जाताभिलाषः सर्वदा च तस्योप-करणस्य प्रतिसंस्कारः प्राबल्येन दशाबन्धघटिकासंवेष्ट-नादिकं सेवमानस्तच्छीलः उपकरणबकुशः ॥

भावार्थ—बकुश दो तरह के, प्रथम उपकरण बकुश, द्वितीय
: बकुश, जिस में प्रथम श्रेणी वाले को वस्त्र पात्रादि में विशेष
ं होती है, और वह पौण्ड्र वर्धनक-काशी अथवा कुलकादिक

आदि स्थानों के पात्र रखने वाला व सुर्ख, पीला, और सफेद बिन्दु-पद्कादि युक्त शोभनीय अधिक मौलवान उपकरण रखने वाला होता है। और उसकी भावनाएं एसी होती है कि यह वस्त्र मेरा, यह उपकरण मेरा, मैं ही इस का मालिक हुं, इस प्रकार का ममत्व भाव और मूर्च्छा प्रपूर्ण वृत्ति वाला, और अपने पास सर्व उपकरण होते हुवेभी, कोमल, सुहावना, स्वपर को प्रियकारी, और मजबूत, पोतमें भी बारीक, निबिड घाडा और मनोहर वर्णादि वाला उपकरण लेने की जिसकी भावनाएं रहा करती हों, और उनकी स्थिती कायम रखने के लिये निरंतर समेटने बांधने आदि की चिन्ता में ही निमग्न रहता हो उस को शास्त्रकार महाराजा उपकरणबकुश कहते हैं, और ठीक है श्रीमान् हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज का विवेचन समाज को उपयोगी है, इसपरसे समझ सक्ते हैं कि जो साधु अनेक नाह के रंगवाला, बिन्दुवाला, पट्टावाला, वस्त्र अंगीकार करे तबभी वह पांच निर्यंठे में रहसक्ता है, और इस उद्देश को विशेष सिद्ध करने के लिये श्रीमान् सिद्धसेन सूरीश्वरजी भी स्वरचित टीकामें फरमाते हैं कि,

प्रमाण ९

बकुशो द्वेधा–उपकरणशरीरभेदात्, तत्र तयोरुपकरण-बकुशः उपकरणे–वस्त्रपात्रादौ अभिष्वक्तचित्तः- प्रतिबद्ध-स्नेहः समुपजाततोषः वस्त्रं विविधं देशभेदेन पौण्डुवर्धनक-

फाशीकुलकादि पात्रमपि पूरिका-गंधारकप्रतिग्रहकादि विचित्रं " रक्तपीतविन्दुसितपट्टकादिप्रचितं महाधनं महामूल्यं एवमादिना उपकरणपरिग्रहेण युक्तो ममेदं स्वमहमस्य स्वामीत्युपजातमूर्च्छः पर्याप्तोपकरणोऽपि भूयो बहुविशेषोपकरणकांक्षायुक्तः, बहु विशेषो यत्र मृदुदृढश्लक्ष्णघन-निचित " रुचिरवर्णादि " ताहस्युपकरणे लब्धव्ये जातकांक्षो-जाताभिलापः, सर्वदा च तस्योपकरणस्य प्रतिसंस्कार-प्रक्षालनदशाबंधघटिका-संवेष्टनादिकं सेवमानस्तच्छील उपकरणबकुशः ॥

उपरोक्त कथन का भावार्थ श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी के कथन से मिलता झुलता है, आप फरमाते हैं कि रंगीन, चित्र, विचित्र, वर्ण के वस्त्र रखने वाले बकुश भी निर्ग्रन्थ गीने जाते हैं, इस से सावित होता है कि पूर्वाचार्यों के निर्माण किये हुवे वस्त्र परिवर्तन वाले याने रंगवाले वस्त्र रखना अनुचित तो नहीं है, किंतु शास्त्रवेत्ताओं ने जगह जगह आज्ञा दी है.

उत्तराध्ययन की बडी टीका जो " पाइ " टीका के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें श्रीमान् वादिवेनालशांतिसूरिजी फरमाते हैं कि.

प्रमाण १०

उत्तराध्ययन पाइ टीका का पाठः क्षुल्लक ६ अध्ययन ।

उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्च, वस्त्रोपकरणाभिष्वक्त-

चित्तो विविधविचित्रमहाधनोपकरणपरिग्रहयुक्तः विशेषयुक्तोपकरणाकाङ्क्षायुक्तो नित्यं तत्प्रतिकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति, शरीराभिष्वक्तचित्तो विभूषार्थं तत्प्रतिकारसेवी शरीरबकुशः ॥

भावार्थ–बकुश दो प्रकार के, एक उपकरणबकुश दूसरा शरीरबकुश, देखिये पहला बकुश जो है वह उपकरण में राग वाला होता है, और जुदे जुदे देशों के बने हुवे, कयेक रंगवाले विशेष कीमती वस्त्र–उपकरण को रखता है और पास में होते हुवे भी ज्यादे उपकरण लेने की आकांक्षा वाला होता है, और नित्य प्रति उन उपकरण के संस्कार में दत्तचित्त रहता है, वह साधु उपकरण-बकुश कहलाता है।

श्रीमान् वादिवेताल शांतिसूरिजी के कथनानुसार कयेक रंग-वाला याने रंगीन वस्त्र धारण करने वाला हो तबभी वह साधु बकुश-की पंक्ति मे नीचे गीरा हुवा तो नहीं है, एसा स्पष्ट सिद्ध होता है.

इतना पढकर समझना चाहिये कि प्रमाण नम्बर ७।८।९।१० में जो बयान किया है वह उन साधुओं का है कि जो शरीर की शोभा के लिये नानाप्रकार के रंगवाले वस्त्र धारण करते हैं और ममत्व भाव युक्त जिनका संस्कारादि किया करते हैं, और कोमल मन मोहक सुहावने वस्त्र विशेष रुपमें संग्रह करने वाली भावना में मग्न रहते हैं, जिनको पूर्वाचार्यों ने बकुश की गीनती में बताये हैं.

तो जो साधु महात्मा शासनरक्षा के लिये, अथवा भक्तजन-मनुष्य-मनुष्यों को विशेष श्रद्धा स्थापित करने के लिये पूर्वाचार्यों के कथनानुसार रंग परिवर्त्तित वस्त्र धारण करे जिसमें क्या अतिशयोक्ति है? शास्त्रों में तो जगह जगह प्रतिपादित किया है, जितने प्रमाण चाहिये शास्त्रवेत्ता गण बता सक्ते हैं, मेरे जैसा पामर प्राणी क्षुद्रात्मा एसे विषय को स्पष्टतया और विशेष प्रमाणों सहित बताने से असमर्थ है, तथापि जो जो साहित्य तद्‌विषयक लब्ध हुआ है वह तो पाठकों के समक्ष रखना मेरा कर्तव्य है.

प्रमाणों की शास्त्रों में कमी नहीं है, तलाश करने वाला चाहिये, ज्यों ज्यों प्रयत्न होगा कुछ न कुछ मिलेहीगा, इसी विषय में श्रीभगवती सूत्र, व जीवसमास में भी बयान किया है कि—

प्रमाण ११

श्री भगवतीसूत्र शतक २५ उद्देश ५

बकुशो द्विविधो भवत्युपकरणशरीरभेदात्, तत्र वस्त्रपात्राद्युपकरणविभूषानुवर्तनशील उपकरणबकुशः

भावार्थ—उपकरण और शरीर के भेद से बकुश दो तरह के होते हैं, उनमें वस्त्र पात्रादिक उपकरणों की शोभा करने की आदत वाला उपकरण बकुश गिना जाता है ।

जीवसमासे प्रमाण १२

बकुशा अपि द्विधा, उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्च, तत्र वस्त्रपात्राद्युपकरणस्य प्रक्षालनादिविभूपानुवर्तका उपकरणबकुशाः

भावार्थ—बकुशाभी दो प्रकार के हैं प्रथम उपकरणबकुश, और द्वितीय शरीरबकुश, उसमें वस्त्र पात्रादि उपकरण को धोने-साफ करने वाला और बारंबार उनका संस्कार करने वाला उपकरणबकुश गीना जाता है.

उपरोक्त पाठों से सिद्ध होता है कि विभूषायुक्त भावनाओं से लिया हुवा रंगीन वस्त्र बकुशपना उत्पन्न करता है. अन्यथा नहीं. और इसी सबब से श्रीमान वादिवेताल शांतिसूरीजी ने केशी गौतमीय अध्ययन की टीका में कहा है कि 'वस्त्र के रंग आदिकी प्रवर्ती होगी' इतनाही कहा, लेकिन बकुशपना नहीं बताया.

केशीगौतमीयअध्ययन.

प्रमाण १३

वर्धमानविनेयानां हि रक्तादिवस्त्रानुज्ञाने वक्रजडत्वेन वस्त्ररंजनादिषु प्रवृत्तिरतिदुर्निवारैव स्यादिति न तेन तदनुज्ञातं, पार्श्वशिष्यास्तु न तथेति रक्तादीनामपि (धर्मोपकरणत्वं) तेनानुज्ञातामिति भावः

भावार्थ—श्री वीतरागमा के शासन में उनके अनुरागी साधुओं को यदि रंगदार वस्त्र धारण करने की आज्ञा करने में आवे तो उनको वक्रजड़पना से वस्त्र रंगने आदि में प्रवर्ती विशेष करमें हो जाय अतएव भगवान श्री महावीर ने आज्ञा नहीं दी, तथापि श्रीपार्श्वनाथ भगवान ने रक्तादि रंगवाले वस्त्रों को धर्मोपकरण तरीके फरमाया, इस का मूल हेतु यह है कि उन में वक्रजड़ पना नहीं था, इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, यदि रंगीन वस्त्र मात्र से ही संयम विराधक होता तो "वस्त्र रंगने आदि की प्रवर्ती होजाय" ऐसा क्यों फरमाते? और तेइस में भगवान ने जो आज्ञा दी वह देखते स्वतः सिद्ध होता है कि रंगीन वस्त्र काम में लेना चारित्र का घातक तो नहीं है, हां इतना जरूर है कि शरीरशोभा के लिये याने अपने अवयव विशेष सुंदर बनाने को किंवा शरीर ...
विशेष शोभास्पद मालूम करने के हेतु शृंगारभूत अपनी
विविध प्रकार के रंगीन वस्त्र धारण करे तो उसको बकुश
पड़ेगा, याने संयम का विराधक होगा, और यहभी स्मरण •
रंगीन वस्त्रही बकुशपना बताता होवे और श्वेत वस्त्र
गीना जाय ऐसा नहीं है, शास्त्रकार महाराज तो .
सिद्धकरते हैं कि चाहे श्वेत वस्त्र हो चाहे रंगीन हो -
शृंगार और शोभास्पद भावना से धारण किया है. तो
की कोटी में लाने वाला होगा, इस विषय में ...
ने भी फरमाया है ।

उत्तराध्ययनभाष्यं प्रमाण १४

सरीरे उवगरणे वा पाउसियत्तं दुहा समक्खायं । सुक्किल्ल वत्थाणि धरे देसे सव्वे सरीरम्मि ॥ १ ॥

भावार्थ—बकुशपना दो तरह का होता है एक शरीर से, दूसरा उपकरण से, जिनकी विशेष प्रवर्त्ती हो वोही उनका बकुश. इस में उपकरण बकुश उसको कहना चाहिये कि शरीर पर एक अंशसे या सर्वथा उपकरण श्वेत रक्खे याने वस्त्र श्वेत ही धारण करे.

पाठक! समझने जैसा विषय है, पक्षपात रहित हो सोचा जाय तो क्या यह आ [illegible] धारक साधु मात्र को सर्वथा प्रकार से बकुश की [illegible] ही है? नहीं. विषय को [illegible]

उत्तराध्ययनभाष्यं प्रमाण १४

सरीरे उवगरणे वा बाउसियत्तं दुहा समक्खायं। सुक्किल्ल वत्थाणि धरे देसे सव्वे सरीरम्मि ॥ १ ॥

भावार्थ—बकुशपना दो तरह का होता है एक शरीर से, दूसरा उपकरण से, जीसकी विशेष प्रवर्ती हो वोही उनका बकुश. इस में उपकरण बकुश उसको कहना चाहिये कि शरीर पर एक अंशसे या सर्वथा उपकरण श्वेत रक्खे याने वस्त्र श्वेत ही धारण करे.

पाठक! समझने जैसा विषय है, पक्षपात रहित हो सोचा जाय तो क्या यह आज्ञा सफेद वस्त्र धारक साधु मात्र को सर्वथा प्रकार से बकुश की गणनामें रखने वाली है? नहीं, विषय को पढ़ते समय विशेष प्रकार से बुद्धि पूर्वक समझना चाहिये, शरीर-शोभा के लिये ही सर्वथा श्वेत वस्त्र किंवा रंगीन अंगीकार करे तो दोनों प्रवर्ती बकुश संख्यामें दाखिल करदेती है, लेकिन चारित्र की रक्षा के लिये शासन की विशेष श्रद्धा स्थिर करने के हेतुभूत सम्यग्दृष्टी आत्माओं को लाभ होने के लिये यदि श्वेत-या रंगीन वस्त्र धारण किया जाय तो वह हानिकर नहीं होता, और यही सबब है कि शास्त्रकार महाराज जगह जगह खुलासा करते गये कि एसा न हो साधु वर्ग शरीर शोभा के लिये ही अनेक प्रकार की गति में प्रवर्त रहाकरें अतएव रंगीन वस्त्र अंगीकार करने में भी बकुशपना नहीं आता, और न श्वेत वस्त्र धारण करने में आता है।

भावार्थ—श्री वीरपरमात्मा के शासन में उनके अनुयायी साधुवर्ग को यदि रंगदार वस्त्र धारण करने की आज्ञा करने में आवे तो उनको वक्रजडपना से वस्त्र रंगने आदि में प्रवर्ती विशेष रूपमें हो जाय अतएव भगवान श्री महावीर ने आज्ञा नहीं दी, तथापि श्रीपार्श्वनाथ भगवान ने रक्तादि रंगवाले वस्त्रों को धर्मोपकरण तरीके फरमाया, इस का मूल हेतु यह है कि उन में वक्रजड पना नही था, इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, यदि रंगीन वस्त्र मात्र से ही संयम विराधक होता तो "वस्त्र रंगने आदि की प्रवर्ती होजाय" एसा क्यों फरमाते? और तेइस में भगवान ने जो आज्ञा दी वह देखते स्वतः सिद्ध होता है कि रंगिन वस्त्र काम में लेना चारित्र का घातक तो नहीं है, हां इतना जरूर है कि शरीरशोभा के लिये याने अपने अवयव विशेष सुंदर बनाने को किंवा शरीर स्वपर को विशेष शोभास्पद मालूम करने के हेतु शृंगारभूत अपनी इच्छानुकूल विविध प्रकार के रंगीन वस्त्र धारण करे तो उसको बकुश कहना पडेगा, याने संयम का विराधक होगा, और यहभी स्मरण रखिये कि, रंगीन वस्त्रही बकुशपना बताता होवे और श्वेत वस्त्र आराधक ही गीना जाय ऐसा नहीं है, शास्त्रकार महाराज तो इस बात को सिद्धकरते हैं कि चाहे श्वेत वस्त्र हो चाहे रंगीन हो किन्तु शरीर शृंगार और शोभास्पद भावना से धारण किया है तो वह बकुश की कोटी में लाने वाला होगा, इस विषय में भाष्यकार महात्माओं ने भी फरमाया है।

उत्तराध्ययनभाष्यं प्रमाण १४

सरीरे उवगरणे या पाउसियत्तं दुहा समक्खायं । सुक्किह
वत्थाणि धरे देसे सव्वे सरीरम्मि ॥ १ ॥

भावार्थ—बकुशपना दो तरह का होता है एक शरीर से, दूसरा
उपकरण से, जीमकी विशेष प्रवर्ती हो वोही उनका बकुश. इस
में उपकरण बकुश उसको कहना चाहिये कि शरीर पर एक अंशमे
या सर्वथा उपकरण श्वेत रखने याने वस्त्र श्वेत ही धारण करे.

पाठक! समझने जैसा विषय है, पक्षपात रहित हो सोचा
जाय तो क्या यह आज्ञा सफेद वस्त्र धारक साधु मात्र को सर्वथा
प्रकार से बकुश की गणनामें रखने वाली है? नहीं, विषय को
पढते समय विशेष प्रकार से बुद्धि पूर्वक समझना चाहिये, शरीर-
शोभा के लिये ही सर्वथा श्वेत वस्त्र किंवा रंगीन अंगीकार करे तो
दोनों प्रवर्ती बकुश संख्यामें दाखिल करदेती है, लेकिन चारित्र की
रक्षा के लिये शासन की विशेष श्रद्धा स्थिर करने के हेतुभूत
सम्यग्दृष्टी आत्माओं को लाभ होने के लिये यदि श्वेत-या
रंगीन वस्त्र धारण किया जाय तो वह हानिकर नही होता, और यही
सबब है कि शास्त्रकार महाराज जगह जगह खुलासा करते गये
कि एसा न हो साधु वर्ग शरीर शोभा के लिये ही अनेक प्रकार की
[illegible]ति में प्रवर्त रहाकरें अतएव रंगीन वस्त्र अंगीकार करने में भी
[illegible]कुशपना नही आता, और न श्वेत वस्त्र धारण करने में आता

बकुशपना तो केवल शरीर को शृंगारने व उसके अवयव विशेष सुंदर मन मोहक बनाने की भावना में ही समाया हुवा है, और यह निर्णय ठीक है, क्योंकि रंगीन वस्त्रों में ही बकुशपना होता तो श्री अजीतनाथ आदि बाइस तीर्थंकरों के शिष्य गण क्यों नहीं बकुशपने में गीने गये ? इसका न्याय देखने बैठें तो यही निश्चय होगा कि उन महानुभावों ने बहु मौल्यवान--रंगीन वस्त्र शरीर शोभा के लिए नहीं रखे थे, किन्तु ऋजुप्राज्ञ होने से मौल्यवान वस्त्र संयमके साधन निमित्त अंगीकार किये थे, अब अपने हठवाद को ले बैठें और कुयुक्तियों द्वारा आज्ञा की हत्या करें तो इस में कोई क्या करसक्ता है ? इस विषयमें श्रीस्थानाङ्गसूत्र की टीका में श्रीमान अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज ने फरमाया है कि.

प्रमाण १५

णाहिं उवकरणं पाउग्गियत्तं दुहा गणागणाणं । सुविहि
वत्थाणि धरे देह मज्झे गरीरम्मि ।

(स्थानाङ्ग पत्र ३३७ लाइन २१)

उपरोक्त प्रमाण का भावार्थ श्री उत्तराध्ययन की टीका में मिलता जुलता है, इस लिये मानना पड़ेगा कि मान वस्त्र मात्र में या रंगीन में ही नहीं किन्तु शरीर शोभा के लिये किसीभी मालका वस्त्र धारण करने में बकुशपना है, और यूं तो बारीक दृष्टि से देखने बैठें तो मान वस्त्र वगैरे की बिना अनुमान किया (पडिकमण) भी अनुयोगद्वारसूत्र में द्रव्यावश्यक गीनके बताइ है.

प्रमाण १६

" पंडुरपडपावरणा "

भावार्थ--जो साधु श्वेतवस्त्र पहिन कर नित्य प्रति उभय टंक अस्खलित विधिसे भी आवश्यक क्रिया करते हैं उसका आवश्यक द्रव्यआवश्यक गीना जाता है, और श्रीअनुयोगद्वारसूत्र की साक्षी से टीकाकार महाराजा श्री कोट्याचार्यजी भी विशेषावश्यक की टीका में श्वेतवस्त्र वाले का प्रतिक्रमण द्रव्यावश्यक होना फरमाते हैं [प्रमाण १७ विशेषावश्यकटीका] सरला होनेसे लिखा नहि.

उपरोक्त कथनानुसार प्रमाण नंबर १४-१५-१६ और १७ पढनें से सिद्ध होगा कि श्वेतवस्त्र पहिनना भी साधुओं को बकुश-अवस्था में ले जाता है, और रंगीन कपडा पहिनना भी बकुश कोटी में लेजाता है, तो अब करना क्या ? एसा टीकास्पद प्रश्न उपस्थित होता है, इसी का नाम स्याद्वाद. वस्तु अस्ति भी है और नास्तिभी है, अतएव यही निर्णय हुआ कि वस्त्र मात्र से बकुश पना नही, परंत्व भावना उपर इस का संपूर्ण आधार है। न कि कापडाका रंग पर। हां ममत्व भाव से जो वस्त्र चाहे श्वेत हो या रंगीन हो यह पहिना है वो बकुशपणा है। और चारित्र की रक्षा के लिये पहिना हैं तो वह उत्तम और प्रशंसनीय है। क्योंकि दुनिया साधु लिंग पर विश्वास करे और वह चारित्र को सुख पूर्वक वहन करे और उन के जैसा वेश देख साधु वर्ग की रक्षा हो इस के हेतु भूत वस्त्र-लग

निश्चय किया हुवा है । उसी पर आरूढ रहना आवश्यकिय है । इस के विशेष प्रमाण में श्री उत्तराध्ययन की टीका में बयान है—

प्रमाण नंबर (१८)

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविकप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओअणं ॥ १ ॥

भगवान् श्रीगौतमगणधर स्वामी फरमाते हैं कि लोगों के भरोसे के लिये तरह तरह के उपकरण रखने की आवश्यकता है, साधुलिंग एसा प्रमाणभूत होना चाहिये कि जिस से संयम यात्रा सुख पूर्वक निर्वाह हो जाय और जैसे लिंग वाले साधू पर विश्वास रहे, और वह लाभदाइ होता है, और होना ही चाहिये, देखिये! जिस समय अनाचार की वृद्धि हो जाय और दुनिया को साधु वेश पर से भरोसा उठ जाय, और जिस से संयमयात्रा सुख पूर्वक निर्वाह न हो, एसे समय उपकरण की तरह वर्ण की भी परावृति हो वह समयोचित ही मानी जाती है, इस विषय में टीकाकार महाराज शान्तिसूरिजी भी फरमाते हैं, देखिये—

प्रमाण (१९)

किञ्च-प्रत्यार्थं प्र-अमी व्रतिन इति प्रतीतिनिमित्तं, कस्य? लोकस्य, अन्यथा हि यथाभिरुचितं वेषमादाय पूजादिनिमित्तं विडम्बकादयोऽपि वयं व्रतिन इत्यभिदधीरन् । ततो व्रतिष्वपि न लोकस्य व्रतिन इति प्रतीतिः स्यात्, किं तदेवमित्याह

' नाना विधविकल्पनं ' प्रक्रमान्नानाप्रकारोपकरणपरिकल्प
नानाविधं हि वर्षाकल्पाद्युपकरणं यथावयतिप्त्वेव संभवतीि
कथं न तत् प्रत्ययहेतुः स्यात् ? तथा यात्रा संयमनिर्वाहम
दर्थं, विना हि वर्षाकल्पादिकं वृष्टयादौ संयमबाधैव स्यात्, गृहप
ज्ञानं तदर्थं च, कथञ्चिच्चित्तविप्लवोत्पत्तावपि गृहस्तु यथाऽ
व्रतीत्येतदर्थं लोके लिङ्गस्य-वेषधारणस्य प्रयोजनमितिप्रवचने
लिङ्गप्रयोजनं ।

भावार्थ–संसारी आत्मा देखने ही यह कह देवे कि यह सा
महात्मा है, इस तरह का विश्वास साधुवेश देखने ही होजाय एः
वेश-उपकरण साधु को रखना उचित है, क्योंकि जहां तक विहरव
वेश और साधु वेश में भिन्नता दृष्टि गोचर न होगी वहां तक साधु
नियमों का निर्वाह आनंद पूर्वक नहीं होसक्ता, इसी हेतु को लि
करने के लिये आज्ञा दी है कि वर्षाकल्पादि तरह तरह के उपकर
रक्खे, क्योंकि वर्षाकल्पादि उपकरण चारित्रपालन क्रिया में निपुण
इन्हीं महात्मा के पास होता है ऐसा विश्वास जनसमुदाय में स्थ
स्थित होरहे है, अतएव विश्वास तुल्य वेश पहिनना आवश्यकीय है

पाठक ! जगह जगह बयान आता है इसमें पुनरावृत्ति दो
आपकी दृष्टि में आता होगा, किन्तु मेरा साध्य बिन्दु केवल यही
कि "वस्त्रवर्णसिद्धी" विषय पर दृढ विश्वास बैठ जाय, इसी
पुनः पुनः पिष्ट पेषण होतो वह सत्य है। देखिये !
सूरिश्वरजी [illegible]

दिया है- आपका कथन है कि विडम्बकों के भेष से भिन्न प्रकार का वेश यदि साधु महात्माओं के न हो तो उन पर लोगों को साधुत्व का विश्वास नहीं बैठता, और विश्वास नहीं बैठने से संयम को पालना कठिन होजाता है, वास्ते पूर्वाचार्यों की सम्मति याने आज्ञा के मुवाफिक वेश रखना हितकर होता है।

हां, एक बात और याद आगइ कि जैनप्रतिमा यदि अन्य दर्शनवालों के हस्तगत है, तो अवंदनीय गीनी जाती है, इसी तरह वेश विडम्बको ने लिया हुवा साधु वेश भी अवंदनीय होजाता है, इसी कारण से जगत की चाल को देख आज्ञा में रह कर रंग परिवर्तन करना. बेजां नहीं है।

आप तलाश करें, किसी भी मूल सूत्र में साधू को श्वेत वस्त्र ही पहिनना एसा अंग, उपांग, छेद, मूल, या नंदी, अनुयोग में प्रमाण नहीं मिलेगा. लेकिन, आचारांग आदि के जो प्रमाण उपर बताये हैं उनमें यह रंगीनवस्त्रोंका विधान है। इसके अतिरिक्त बृहत्कल्प सूत्र के मूल पाठ में श्रीमान भद्रबाहु स्वामी महाराज ने फरमाया है कि—

प्रमाण (२०)

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं पंचवत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तंजहा--जंगिए भंगिए, साणए, पोत्तए तिरिडपट्टे नाम पंच मे ॥

(बृहत्कल्प उद्देशा २ सूत्र २९)

भावार्थः—साधु साध्वियों को पांच प्रकार के वस्त्र रखना

नीय है. प्रथम मो जंगिक का, दूसरा अनाभिका, तीसरा सणका
कपास का, पांचमा तिरिडपूभ का, एमा बयान है और इस
पर टीकाकार महाराज व भाष्यकार ने पांच प्रकार के वस्त्रों
मा विवेचन किया है सो देखियेः—

प्रमाण (२१)

जङ्गमेभ्यो जातं जंगिकं, तत् पुनर्विकलेन्द्रियनिष्पन्नं
न्द्रियनिष्पन्नं वा, अनयोर्मध्ये एकैकमपि विभागेन चिन्त्य-
अनेकविधं भवति, तद्यथा-" पट्टसुवन्ने मलए अंसुगचीणं-
य विगलेंदी । उण्णोट्टियमियलोमे कुतवे किट्टे त पंचेंदी
॥ पट्टाति पट्टसूत्रजं सुवर्णवर्ण सूत्रं केषांचित् कृमीनां
तन्निष्पन्नं सुवर्णसूत्रजं, मलयो नाम देशःतत्संभवं मल-
अंशुक-श्लक्ष्णपट्टकः तन्निष्पन्नं अंशुकं चीनांशुको नाम
कोशाख्यः कृमिः तस्माज्जातं चीनांशुकं, यद्वा चीनो नाम
ः तत्र य श्लक्ष्णतरः पट्टः तस्माज्जातं चीनांशुकं, एतानि
न्द्रियनिष्पन्नानि, तथा उर्णिकमौष्ट्रिकं मृगरोमजं चेति
नि कुतपो जीर्णं किट्टं तेषामेवोर्णरोमादीनां अवयवा त-
ं वस्त्रमपि किट्टं, एतानि पंचेन्द्रियनिष्पन्नानि द्रष्टव्यानि,
भाङ्गिकादीनि चत्वार्यपि एकगाथया व्याचष्टे-अतसी
दीयं भंगियं साणियं च सणवके । पोत्तय कप्पासमयं
लमा तिरिडपट्टो ॥ २ ॥

अतसीमयं वा वंसित्ति वंशकरीलस्य मध्याद्यन्निष्पद्यते तद्वा एवमादिकं भाङ्गिकं, यत् पुनः सनवृक्षवल्कात् जातं तद्वस्त्रं सानकं पोतकं कर्पासमयं तिरीट वृक्षवल्काज्जातं तिरीटपट्टकम् । बृहत्०

भावार्थः—त्रसजीवों से पैदा होने वाला जो कि अवयव आदि से उत्पन्न होता है। यह जांगमिक (जंगिक) और अतसीका बना हुआ भांगिक, सण का बना हुआ सानक, रूई का बनाया हुआ कार्पासिक और तिरीड का छाल का बनाहुआ तिरीड इस तरह पांच प्रकार के वस्त्र लेना और पहिनना पांच महाव्रतधारी साधु साध्वियों को कल्पनीय है। जिसकी व्याख्या भाष्यकार महाराज विस्तार से फरमा गये हैं, कि विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय से बनाहुआ वस्त्र अनेक तरह का होता है, जैसे पट्टसूत्र से बना हो वह पट्टवस्त्र, सुनहरी रंग के सूत्र से बना हुआ कपड़ा सुवर्ण, मलय देशमें बना हुआ मलयज, बारीक पट्टक से बना हुआ अंशुक, कोशिश से बना हुआ चीनांशुक या चीनदेश में बारीक सूत का बना हुआ चीनांशुक, ऐसे कपड़े की व्याख्या बताते हुये ऊंट के लोम का अथवा हरिण के लोम का जो पंचेन्द्रिय से बनते हैं, इस तरह वंश करील से बना हुआ भाङ्गिक, सण वस्त्र का सानक, कपास का पोत व तिरीड छाल का बनाया हुआ तिरीड पट्टक।

महानुभाव! ऊपर के पाठ से स्पष्ट सिद्ध होता है कि सुवर्ण-रंगके सूतसे बना हुआ कपड़ा जिसको सुवर्णपट्टक कहते हैं, वह

साधु साध्वियों को ओढना पहिनना कल्पनीय हैं। इसकी स्पष्टता में श्रीमान् गणधर महाराज श्रीठाणांग सूत्रमें और अभयदेवसूरीश्वरजी महाराज टीका में स्पष्ट करमा गये हैं, देखिये—

प्रमाण २२ स्थानाङ्ग सूत्र.

कप्पन्ति निग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा, परिहरेत्तए वा, तंजहा जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तए, तिरीडपट्टए णामं पंचमए.

प्रमाण २३ स्थानांग टीका.

कप्पंतीत्यादि कण्ठ्यं, नवरं कल्पन्ते-युज्यन्ते धारयितुं परिग्रहे परिहर्तु आसेवितुमिति, अथवा 'धारणया उवभोगो परिहरणा होइ परिभोगो' त्ति, 'जंगिये' त्ति जंगमाः त्रसास्तदवयवनिष्पन्नं जांगमिकं कम्बलादि 'भंगिए' त्ति भंगा- अतसी तन्मयं भांगिकं 'साणए' त्ति सणसूत्रमयं सानकं 'पोत्तए' त्ति पोतमेव पोतकं कार्पासिकं 'तिरीडपट्टे 'त्ति वृक्षत्वङ्मय मिति' इह गाथा 'जंगमजायं जंगिय तं पुण विगलिंदियं च पंचिंदी। एक्केक्कंपिय इत्तो होइ विभागेणऽणेगविहं ॥ १ ॥ पट्टसुवन्ने मलए अंसुय चीणंसुए य विगलिंदी। उण्णोट्टिय मियलोमे कुतवे किट्टिय पंचिंदी ॥ २ ॥ पट्टः प्रतीतः सुवर्ण-सुवर्णवर्ण सूत्रं कृमिकाणां 'मलयं' मलयविषय एव अंशुकं श्लक्ष्णपट्टकः चीनांशुकं कोशीकारः चीनविषये वायद् भवति श्लक्ष्णात् पट्टादिति, मृगरोमजं-शश-

लोमजं मूषकरोमजं वा कुतपश्छागलं किट्टिजमेतेषामेव अवयवनिष्पन्नमिति । अयसीवंसीमाइय मंगियं साणयं तु सणचक्का । पोतं कप्पासमयं तिरीडरुक्खा तिरिडपट्टो ॥ १ ॥

भावार्थ—श्रीमान् गणधर महाराज श्री स्थानाङ्ग सूत्र में फरमाते हैं कि साधु और साध्वियों को पांच प्रकार के वस्त्र रखना पहिनना कल्पता है । उन पांचों प्रकार का वर्णन इस तरह बताया गया है ।

(१) जंगमिक (२) भङ्गिक (३) माणक (४) पोतक (५) और तिरीडपट्टक । इस तरह मूलसूत्र में पांच प्रकार के वस्त्र धारण करने की आज्ञा है । इस से समझ में आ जायगा कि यदि श्वेत सिवाय अन्य रंग के वस्त्र जैसा कि शास्त्रों में कथन है । वे पहिनने से यदि चारित्र चला जाता होता तो गणधर महाराज एसी आज्ञा क्यों देते ? और टीकाकार श्रीमान अभयदेवसूरीश्वरजी महाराज भी उक्तकथन का समर्थन करते हुवे फरमाते हैं कि धारन करने के लिये किंवा वापरनेके काम के लिये, एक वख्त या कइ वख्त याने पुनः पुनः उपयोग में लाने के लिये जंगमिकादि वस्त्र कल्पते हैं । और इस कथन के अनुसार प्रवृत्ति भी होरही है । याने त्रस के शरीर की रोमराय से बना हुआ कामली वगैरह काम में लाइ जाती है । इसी तरह अतसी से बना हुवा भांगिक, सण से उत्पन्न हुआ हो वह माणक कपास से तैयार हुवा हो यह पोतक और वृक्ष की छाल से तैयार होता है वह तिरीडपट्टक । यह

सिंदूरवहूक कृमी की लाल से बनता है और उसका स्वाभाविक रंग लाल में मिलता जुलता होता है सो वह वस्त्र लाल रंग जैसा दिखता है। उसको रखने की भी आज्ञा दी है, और इसी तरह वृक्षों का बना हुआ कपड़ा रखने की आज्ञा "कृमिजं" और भाष्य में भी दी गई है, जिसका विवरण पहले लिखा गया है। और विशेष में टीकाकार महाराजा फरमाते हैं कि सुवर्णसूत्र से बना हुवा वस्त्र, वैसे ही मूषक के रोम से बने हुवे वस्त्र इत्यादि लेने का कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि ऐसे वस्त्र लेकर काम में लेने की साधुओं को संभावना तो नहीं है। तथापि इतना लाभ है कि इन वस्त्रों में मुख्यतया रहे हुये मतलब को भी समझ लेवे। इस के लिये टीकाकार कहते हैं कि—

प्रमाण (२४)

इह पंचविधं वस्त्रं प्ररूपितमप्युत्सर्गतः कार्पासिकौर्णिके एव ग्राह्ये यदुक्तं "कप्पासिउ दोन्नि उन्निय एक्को य परिभोगो" इति। कप्पासियस्स असई वागयपट्टो य कोसियारो य असईय उन्नियस्सा वागय कोसिअपट्टो य॥ १॥

भावार्थ—इस जगह पर पांच प्रकार का वस्त्र लेने की प्ररूपणा की तथापि उत्सर्ग से कपास और ऊन का ही लेना फरमाया है। और इसका खुलासा करने के लिये कहा है कि सूत के बने हुवे और ऊनका बना हुआ एक कपड़ा काम में लाना ऐसी आज्ञा है। लेकिन सूत के सिवाय सौ धुलाई का लेने दिये जाते हैं। अथवा
[illegible]

रेशमी भी ले सक्ते हैं। और ऊन का कपड़ा भी न मिले तो छाल व
रेशम का लेना ऐसा बयान है। इसी तरह भाष्य में लिखा है कि-

प्रमाण (२५)

कप्पासियस्स असती वागयपट्टय कोसियारं य। असती य
उण्णियस्सा वागय कोसेज्जपट्टय ॥ १ ॥ कार्पासिकस्याभावे
वल्कजं तस्याभावे पट्टवस्त्रं तदप्राप्तौ कौशिकारवस्त्रमपिग्रहीतव्यं
अथौर्णिकं न प्राप्यते तदा और्णिकस्य स्थाने प्रथमं वल्कजं ततः
कौशेयं ततः पट्टजमपि ग्राह्यं, यद्वा पट्टशब्देनात्र तिरीट-
पट्टकमुच्यते, चशब्दा दतसीवंशीमयमपि ग्रहीतव्यं ॥

भावार्थः—कपासका वस्त्र नहीं होवे तो छालका या रेशमी
वस्त्र लेवे। यदि ऊनका भी न मिले तो छालका या रेशमका वस्त्र
ले सक्ते हैं। टीकाकारमहाराजने जो समर्थन किया है वह निरादर-
णीय तो नहीं हो सक्ता, सविस्तर और स्पष्ट आज्ञा है कि सूत के व
ऊनके न मिले तो छालके या रेशमके लेना चाहिये। और पट्टक
भी लेने की आज्ञा है, किन्तु पट्टशब्द से जांगमिक पट्ट नहीं
लेते तिरीडपट्ट का वस्त्र लेना और अतसी वंशी वगैरह का भी लेना
कल्पता है।

उपरोक्त कथनसे सूत और ऊनके सिवाय जो वस्त्र लेनेके
हैं वह अपवादसे समझना, या क्यों कर? ऐसी शंका उपस्थित हो
सक्ती है। लेकिन यह कथन इस लिये है कि, अपवादसे भी
रंगीन वस्त्र साधुको रखना उचित नहीं है, ऐसा जिनका कथन है,

उनके लिये ही यह प्रयत्न है। क्योंकि संवेगी साधु जो वर्णवाले वस्त्र काममें लेते हैं। उनकी भी मान्यता यह नहीं होती और न वे महानुभाव ऐसा कहते हैं कि उत्सर्गसे रंगीन वस्त्र ही हैं। उनका स्पष्ट कथन यह है कि जिस समय सफेदकपड़ेवालोंमें चारित्रदूषण आने लगा तब विचार कर शास्त्रकी आज्ञानुसार वस्त्रमेंसे रंग परिवर्तित किया। और ठीक भी है। जब कि समाजको पक्षपात इसलिये चारित्रदूषणमें असमानता प्रतीत होने लगा हो. उस समयमें जो विचारज्ञ थे वे यदि न सोचते तो वर्तमान दशा साधु आचार विषयक भयानक होजाती, और ये तरवश गुरुदृष्टी गोचर नहीं होते। इनके बजाय ईर्ष्यापात्र और आनंद उठाने वाले गुरुसमाजका बल बढ़ता चला जाता। आजकी दशा भी ऐसी हो रही है कि यति महाराजोंसे कितनेक देवद्रव्यको भक्षण करना अपना कर्तव्य मानते हैं। और वेष में किंचित् मात्रभी भेद नहीं होता तो श्रावकजीयोंको परीक्षा करना याद नहीं होता और वे उनकी जैनशासनसे विपरीत क्रियाएं देख भ्रममें पड़-जाते। भ्रम ऐसा भयंकर भूत है कि वह मनुष्यकी प्रकृति बिगाड़ बाद पुनः सुधारनेमें बड़ा परिश्रम बनाता है। क्योंकि भ्रमसे भूल पैदा होती है, और भूल मार्ग से हटा देती है, इसका परिणाम अतिविषम आता है। क्योंकि मार्गसे श्रद्धावंत आत्मा विशुद्ध हो जाय वह तो कदापि रास्ते पर आजाता है। किन्तु जड़वादी, हठवादी प्राणियोंको वापिस सुमार्ग पर लाना कठिनसा प्रतीत होता

प्रमाण २६

अथ प्रमादादपहृता न मार्गयति न वा धौतरक्तादिकम- संयतप्रायोग्यमितिकृत्वा गृह्णाति तत्पतुर्लघवः ॥ ९० ॥

भावार्थ—जो महानुभाव प्रमादादि—आलस्यमें रह कर अपने कर्तव्यको भूल जाते हैं। अपनी आत्मा के हितार्थ जो अपने पास उपकरण रखने गए हैं उनको न मांगे तो पारलघु प्रायश्चित आते हैं. वस्त्र धोया या रंगा हुआ है-होने से असंयत योग्य है ऐसा जानकर न लेवे तो चारलघु प्रायश्चित् आता है।

पाठक ! देखो शास्त्रों की आज्ञा, तलाश करते धोया हुआ और रंगा हुवा वस्त्र मिला तथापि असंयतयोग्य मान कर न लेवे तो चारलघुमें दूषित बनता है. इस पाठ से क्या सिद्ध होता है सो आप स्वयं विचार कर लें।

प्रमाण (२७)

पंचण्हं वत्थाणं परिवाडीगाए होति गहणं तु। उप्परिवाडी गहणे पच्छित्ते मग्गणा होइ ॥ १ ॥

प्रमाण (२८)

टीका—पञ्चानां जाङ्गिकादीनां वस्त्राणां परिपाट्या ग्रहणं कर्तव्यं, परिपाटी नाम पूर्वं कार्पासिकं और्णिकं च, तदभावे वल्क- पट्टजादिकमित्यादिरनन्तरोक्तः क्रमः, तामुल्लङ्घ्य उत्परि- पाट्या ग्रहणे प्रायश्चित्तस्य मार्गणा भवति।

भावार्थः—साधु साध्वियोंको वस्त्र ग्रहण करने की विधि बताते हैं, कि जंगिमादिक पांच प्रकार के वस्त्रों का अनुक्रमसे ग्रहण होता है। और जो अनुक्रम सिवाय ग्रहण करते हैं उनको प्रायश्चित आता है। इसका समर्थन करते टीकाकार फरमाते हैं कि जंगिकादिक पांच प्रकार के वस्त्रों का ग्रहण उपरोक्त परिपाटी से होता है। जैसे प्रथम कपास का पीछे ऊनका बाद, में वल्क पट्टक आदि जो उपर कथन किया गया है तदनुसार अनुक्रम से लेवे, अन्यथा दूषित बनना पड़ता है।

इस कथन से सिद्ध हुआ कि [illegible] वस्त्र लेना कल्पनीय है। लेकिन जो महानुभाव अपवाद [illegible] भी लेना [illegible] निषेध करते हैं उनको चाहिये कि इस शास्त्रपाठका मनन करें और हठवाद को छोड़ें। शास्त्रकारोंने तो इसको [illegible] स्पष्ट करनेमें बाकी नहीं रक्खी. वे जानते थे कि भविष्य की अटपटी संतानको समझाने में कठिनाइयां न होवें, एसे उपदेश आदेश स्पष्ट बतला गये हैं। फिर भी देखिये ! कि—

प्रमाण (२९)

दुविहं च मायकसिणं पमाणजुत्तं चेव होति मोल्लजुयं। पमाणजुयं पंचविहं तिविहं पुण होइ मुल्लजुतं ॥ २ ॥

प्रमाण (३०)

द्विविधं च भावकृत्स्नं, तद्यथा—वर्णयुतं मूल्ययुतंच वर्णतो मूल्यतश्चेत्यर्थः, तत्र वर्णयुतं पंचविधं कृष्णादिवर्णभेदात् पंचप्रकारं, मूल्ययुतं पुनस्त्रिविधं जघन्यादिभेदात् त्रिप्रकारं ॥

भावार्थः—भावकृत्स्न वस्त्र दो तरह के होते हैं। एकतो रंगीन-पांच प्रकार के रंग वाला। और दूसरा, मौल्यवाला, जो तीन प्रकार का बताया गया है। जिसका विवरण करते टीकाकार आचार्य भी लिखते हैं कि, भावकृत्स्नके दो भेद हैं। एक तो पांचप्रकारसे रंगीन, और दूसरा मूल्यसहित, मूल्यवाला वस्त्र, कृष्णादि पांच वर्ण वाला वर्णकृत्स्न। और जघन्यादिभेद से तीन प्रकार का मूल्य युक्त मूल्यकृत्स्न कहा जाता है।

पाठक ! समझमें आया होगा कि वस्त्रों के पांच वर्ण बताये गये. जिसमें सफेद कपड़ा भी शामिल आ जाता है। तो इन पांचों वर्ण में से केवल श्वेत वस्त्र का ही आग्रह करना और अन्यवस्त्रों के लिये वितंडावाद [illegible] शांतिसूचक नहीं है। क्योंकि वर्णवाले वस्त्र रखनेके लिये भाष्यकार महाराज भी आज्ञा देते हैं—

प्रमाण (३१)

अथ कालकृत्स्नमपवदति—नीलकंबलमादी उ उण्णियं होंति अच्छियं। सिसिरे तंपि धारिज्जा, सीतं णण्णेण रुम्मति॥ १ ॥

उन्माद्यंवा-जुगुप्सां मन्यते ततस्ततः स्थूलैर्पादिद्याप्यभावितः तावत्तस्य भावकृत्स्नं अनुज्ञातं ॥

भावार्थः—श्रीमान् भाष्यकार महाराज " भावकृत्स्न वस्त्र कामर्मे लाने की आज्ञा देते हैं-" तद्भावितपद " की व्याख्या करते हैं कि कठोरवस्त्रसें निद्रा न आती हो, दिनमें उद्वेग रहता हो, और अपने को हलकापन मालूम हो, जबतक भावित न हो जाय तबतक एसे महानुभावको भावकृत्स्न वस्त्र वापरने की आज्ञा है। लेकिन जो महानुभाव रंगकी अपेक्षा लेकर वर्णवाले वस्त्र का त्याग करतेहैं वेही कोमलवस्त्र (भावकृत्स्न) को अंगीकार करतेहैं यह उनेही विचारने योग्य है। वे चाहे किसी तरह से अपनी प्रवर्ती रक्खें, शास्त्रकार तो स्पष्ट शब्दोंमें वर्णवाला वस्त्र लेने का भी फरमाते हैं। इसी विषयक " बृहत्कल्पवृत्ति में " कहा है कि—

प्रमाण [३५]

कस्यापि साधोरतर्कितं कालगमनं भवेत्। तस्य आच्छादनार्थं भावकृत्स्नं वर्णाढ्यं वस्त्रं प्रागेव गृहीतव्यं ॥

भावार्थः—किसी भी साधुकी अचानक मृत्यु होजाय एसा संभव मालूम हो जावे तो उस साधुको [illegible]
ओढाने को अच्छा [illegible] पहले से ही [illegible]

प्रमाण (३९)

देशीग्लानयावदवग्रहद्वारेषु यदेव द्रव्यकृत्स्ने द्वितीयं पदमुक्तं तद् भावकृत्स्नेऽपि वर्णाढ्ये बहुमूल्ये वा वस्त्रे मन्तव्यं, नवरं तत्र पुनः सदशमदशं वा भवेत्, उभयमपि अपवादपदे ग्राह्यमिति भावः

भावार्थ—द्रव्यकृत्स्नमें जैसा देशी, ग्लान और यावोग्गह यह तीन द्वार कहेहैं वैसेही भावमें लेना। देशी ग्लान और याव-दवग्रहद्वारमें द्रव्यकृत्स्नमें जो अपवाद कहाहै उसी तरह रंगीन और बहुमूल्यवस्त्ररूप भावकृत्स्नमें समझना चाहिये, लेकिन वह वस्त्र दशावाला हो या दशारहित हो, दोनो ही तरह का अपवाद पद-में लिया जाता है। इस भावार्थमें देशीशब्दसे अपवाद बताकर रंगीन वस्त्र अंगीकार करने की स्पष्ट आज्ञा दी है उस "देशी-" शब्दकी शास्त्रकार महाराज क्या व्याख्या करते हैं सो ध्यान पूर्वक पढियेगा।

प्रमाण ४०

देशीपदं व्याख्यानयति-न पारदोषा गारिहा व लोए, धूणाइ-एसुं विहरेज्ज एवं। भोगादरिसारमहायिभूसा कप्पेज्जमिवेव दमा उ तन्या ॥ १ ॥

प्रमाण [३६]

अथ भावकृत्स्ने द्वितीयं पदमाह-देसी गिलाणमा
गाहो य भावम्मि होति बितियपदं । तब्भाविते य तत्तो आमा
उवग्गहट्ठं वा ॥ १ ॥

प्रमाण [३७]

देशी ग्लान यावद् अवग्रहविषयं भावकृत्स्ने द्वितीयं प
भवति, ततः-तदनन्तरं तैर्भावकृत्स्नैः गृहवासे भावितस्तद्भा
वितस्तद्विषयं द्वितीयं पदं, सोऽपि भावकृत्स्नानि परिभुंजीत
त्यर्थः, अवमौदर्यादिषु गच्छस्य उपग्रहार्थ तानि धार्येदि
संग्रहगाथासमासार्थः ॥

भावार्थः--भावकृत्स्न याने मूल्य और रंगवाले वस्त्र के लि
अपवाद कहते हैं। देशी, ग्लान, यावदवग्रह, इतनेमें दूसरा प
भावकृत्स्न के विषय में है, इसी तरह रंगीन और बहुमूल्य से गृह
स्थपनामें भाविक होवे वो भी भावकृत्स्नवस्त्रको काममें ले सक्ता है
अब उनोदरी वगैरह के लिये गच्छ के उपकार के वास्ते धारण क
जिसका विवेचन करते हैं।

प्रमाण ३८

अर्थनामेव विवृणोति-देसीगिलाणजायोग्गहो उ दव्व कसि
णं तु जं वुत्तं। तह चेव होति भावे त पुण सदसं अदसं वा ॥ १ ॥

प्रमाण (३९)

देशीग्लानयावदर्थग्रहद्वारेषु यथैव द्रव्यकृत्स्ने द्वितीयं पदमुक्तं तथा भावकृत्स्नेऽपि वर्णाढ्ये बहुमूल्ये वा वस्त्रे मन्तव्यं, तत्र तत्र पुनः सदशमदशं वा भवेत्, उभयमपि अपवादपदे ग्राह्यमिति भाव

भावार्थ—द्रव्यकृत्स्नमें जैसा देशी, ग्लान और यावदर्थग्रह [illegible] कहा है वैसेही भावमें लेना। देशी ग्लान और यावदर्थग्रहमें द्रव्यकृत्स्नमें जो अपवाद कहा है उसी तरह रंगीन और बहुमूल्यवस्त्ररूप भावकृत्स्नमें समझना चाहिये, लेकिन वह वस्त्र [illegible] हो या दशारहित हो, दोनो ही तरह का अपवाद पद [illegible] जाता है। इस भावार्थमें देशीशब्दसे अपवाद बताकर [illegible] वस्त्र अंगीकार करने की स्पष्ट आज्ञा दी है उस " देशी- " [illegible] शास्त्रकार महाराज क्या व्याख्या करते हैं सो ध्यान पूर्वक पढ़ियेगा।

प्रमाण ४०

देशीपदं व्याख्यानयति–न पारदोषा परिहाय लोए, धुणाइ-पमु विहरेज्ज एवं । भोगाइरित्तारमडाविभूसा कप्पेज्जमिवेय दसा उ तन्था ॥ १ ॥

प्रमाण ४१

पारदोचत्ति चौरभयं तद् यत्र नास्ति यत्र च तथाविधे
प्राव्रियमाणे लोके गर्हा नोपजायते तत्र स्थूणादिविषये
कृत्स्नमपि वस्त्रं प्रावृत्य विहरेत्, परं तस्य दशा छेत्तव्या,
इत्याह-' भोग ' त्ति तासां दशानां शुपिरतया परिभोगः
कल्पते, अतिरिक्तश्चोपधिर्भवति, प्रत्युपेक्षमाणे च दीर्घ
आरभडदोषाः विभूषा च सदशाके वस्त्रे प्राव्रियमाणे
इत्येवमेभिः कारणैस्तत्र वस्त्रे दशाः कल्पयेत्-छिन्द्यात्
तो न छिन्द्यात् ।

भावार्थः—जिस स्थान पर चोर का भय नहीं है
जगह कृत्स्न वस्त्र पहिरनेमें लोकिक निंदा नहीं होती है
में अर्थात् स्थूणा आदि देशों में ऐसे वस्त्र पहिनकर विच
कारोंने " कृत्स्न " शब्द का अर्थ रंगीन और बहुमू
बतादिया है, उसका पाठक महाराय को ध्यान रख
क्योंकि इस शब्द पर इन प्रमाणों का बहुतसा आधार

इस आज्ञा का यह मतलब है कि जिस जगह
हो या लौकिक व्यवहार में लज्जा होती हो ऐसे
वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये, तो विचारने जैसी बात
रंग परिवर्तन करनेमें कौनसा चौरादिका डर

का भय है, जब कि ऐसे वस्त्रों में लिन्द्रात्मक नहीं बनते हैं तो वह पहिनने में भी दोषित नहीं हो सके। इसी तरह क्षेत्रविषयक भी वस्त्र संबंध इस तरह फरमाया है।

प्रमाण ४२

अथ क्षेत्रकृत्स्नमपवदति-नेपालतामलित्तीय, सिंधुसोवीरमाईसु सव्वलोकोवभोज्जाइं, धरिज्जा कसिणाइंवि ॥ १ ॥

प्रमाण ४३

नेपालविषये ताम्रलिप्तिनगर्यां सिन्धुसौवीरादिषु च विषयेषु सर्वलोकोपभोग्यानि कृत्स्नान्यपि वस्त्राणि धारयेत्

भावार्थः—नेपाल ताम्रलिप्ति नगरी सिन्धु सौवीर आदि में सबलोगों का ग्रहण करने लायक ऐसे जो कृत्स्नवस्त्र (रंगीन) वह धारण करना, ऐसा भावार्थ दोनों प्रमाणों का है। लेकिन शंका होना संभव है कि नेपालादि देशों में ही ऐसे वस्त्र धारने की आज्ञा क्यों है? इस शंकाका समाधान भाष्यकार महाराज करते हैं। जिसके लिये भाष्य और टीका पढिये।

प्रमाण ४४

प्रमाण ४५

नेपालादौ देशे सर्वलोकेनापि नाद्यवस्त्राणां आचीर्णता नच तत्र चौरादिभयं, नैवच गौरवं अहमीदृशानि वस्त्राणि प्रावृणो-मीत्येवंलक्षणम् अपि च 'उज्झापितं' विरूपं यद्वस्त्रं तद्वान् सिन्धु-सौवीरादिषु गर्हितो भवति, अतस्तत्र कृत्स्नान्यपि परिभोक्त-व्यानि।

भावार्थ—नेपालादि देशों में सर्व मनुष्य रंगीन वस्त्र पहिनते हैं और वहांपर ऐसे वस्त्र पहिननेमे चोरादि का भय नहीं है। और न इस विषय का अभिमान होता है कि मैं ऐसे उत्तम रंगीन वस्त्र पहिनता हूं, इस लिये अथवा अन्य प्रकार का अयोग्य वस्त्र पहिनने [illegible] उन देशों में याने सिन्धुसौवीरादि में निन्दा होती है। इस लि[illegible] आदिक देशों में कृत्स्न (रंगीन) वस्त्र पहिनने की आज्ञा दी [illegible]

हे महानुभाव! इस अनुपम आज्ञा के भावार्थ को मनन [illegible] सत्यासत्य का निर्णय करना चाहिये, क्योंकि भाष्यकार और टीका[illegible] महाराजश्री स्पष्ट फरमाते हैं कि जिस जगह स्थान पर चोरोंका [illegible] न होवे न गौरव विशेष की भावना उत्पन्न हो और न निन्[illegible] गिने जावें ऐसे देशों में रंगीन वस्त्र पहिनना, क्योंकि जिस [illegible] जैसा वस्त्र प्रचलित हो वहीं साधु को संपादन होता है, अतएव [illegible] वस्त्र लेने में विराधक नहीं गिना जाता। इस आज्ञा को मन[illegible] बाद वर्तमान की परिस्थिती पर विचार किया जाय तो [illegible] वस्त्र किस रंग का प्रचलित है वह ऐसा बहु मूल्य [illegible]

मत्सरादि का भय पैदा हो, न ऐसे सामान्य धर्म से अहंभाव का भाव उत्पन्न होता है । और न संसार के मनुष्य-मनुष्य इस प्रथ के सर्वथा देख आश्चर्य करते हैं, ऐसी अवस्थामें पीले रंग का वस्त्र धारण करने में अतिशयोक्ति नहीं है । तथापि जो महानुभाव इस पर आक्षेप करते हैं उन्हें शान्तचित्त होकर जैनाचार्योंके कथनको समझना चाहिये। इस विषय को और भी स्पष्ट करते हुए —हमें आर्य शिवभूतिजी का उदाहरण याद आता है । इसके लिये भाष्यकार और टीकाकारने कहा है कि–

प्रमाण ४६

उवसामिओ नरिंदो कंबलरयणेहिं छंदए गच्छं । निब्बंधिएणगहणं सिवभूइणो पाउओ णोत्ति ॥ १ ॥ तेनालोगनिसिज्जा गंथे नेणागओ गुरुग्गहणं । दग्गिमणमपत्तियंते सिव्वावणया य गमणं ॥ २ ॥

प्रमाण ४७

स्वेनदृष्टान्तमाह—एगेणं आयरियेणं धम्मकहालद्धिसम्पन्नेणं राया उवसामिओ, सो सव्वं गच्छं कंबलरयणेहिं पडिलाभिउं उवट्ठियो, आयरियेणं मुल्लुयोसंति न गिण्हियंति, तहवि अइनिब्बंधे एगं गहियं, राया भणइ-पाउया इट्ठमग्गेण गच्छह, तहा कयं, (इत्यादि)

भावार्थ—धर्म पाया हुआ राजा सारे गच्छ के मुनिवर्यको रत्नकंबलसे प्रतिलाभता है । और राजा के अत्यंत आग्रह से

एक रत्नकंबल ग्रहण कर राजाके वचनसें उस रत्नकंबलको पहिन कर आचार्य महाराज बाजार में फिरने लगे, इस तरह फिरते रत्नकंबल सहित आचार्य महाराजको एक चोरने देखे और रत्नकंबलपर चोरका मन ललचाया। चोर इसी भावनामें लवलीन होगया कि किसी न किसी तरह रत्नकंबल लेना चहिये। इस तरह के विचार करते२ सायंकाल होगइ, और समय आनेपर मुनिराजने आसन कर निद्रा लेनेका इरादा किया। नींद आनेपर चोर आया और आतेही मुनिराजको पकडे, फाडदिया हुआ वस्त्र देखा और अप्रीति पैदा हुइ, इत्यादि वृत्तांत मनन करने योग्य है। क्योंकि रत्नकंबल जैसा वस्त्र तो विशेष मूल्य वाला होता है और एने वस्त्रको मुनिराजने लिया तथापि चारित्र नहीं चलागया। तो हे महानुभाव! सामान्य रंगीनवस्त्र जो चारित्ररक्षा और पहिचान के लिये काममें लिया जाता है, इस में संदेह करना वृथा है। पूर्वाचार्योंने तो इस विषयमें खुलासा करने बाकी नहीं रक्खा, लेकिन हमारेमें इसको समझनेकी बुद्धि चाहिये। शास्त्रकार महाराज ने मुनिराजोंके लिये जैसा धोनेमें दोष बताया है वैसाही रंगने में बताया है। तो वस्त्र धोनेका अंगीकार करने वालोंको रंगने में ही दोष बताना कहां तक ठीक है? इस विषय में कहा है कि—

प्रमाण ४८

विभूषानिमित्तं यथाप्राप्तं वस्त्रं प्रक्षालयति रजति, घृष्ट वा करोति पटखामादीनि वा वासयति, तदा चतुर्लघुकं।

भावार्थ—वस्त्रकी शोभाके लिये या अपनी शोभाके निमित्त वस्त्रको धोवे, रंगे, सुंहाला कोमल बनावे या पटवासादिक से वासित करे, ऐसी अवस्था में चतुर्लघुक प्रायश्चित्त होता है।

हे महानुभाव ! समझ में आ गया होगा कि जैसा शरीर-अंग की शोभाके लिये वस्त्र धोवे उसमें प्रायश्चित्त आता है वैसाही रंगने-में प्रायश्चित्त आना कहा है। अब जिस समुदायमें रंगीन वस्त्रसे सर्वथा घृणा की गई है उनको वस्त्रधोनेमें भी प्रायश्चित्त मानकर धोना भी न चाहिये। श्रीमान् भाष्यकार महाराजने भी धोना रंगना वगैरह में यही कहाहै कि—

भूसानिमित्तं खलु ते करेंति उग्घाइमा।

यानें शोभाके हेतुभूत धोना रंगना आदि करनेमें चतुर्लघु प्रायश्चित्त आता है। इस प्रमाणको देखते सिद्ध होताहै कि, शासनकी रक्षाके लिये रंगीन वस्त्र रखनेमें दूषित नहीं बनते, किंतु शरीर-शोभाके निमित्त रखनेसे दूषित होतेहैं। अब कपड़ा धोनेमें शोभाका विवरण भाष्यकार किस तरह बताते हैं सो देखियेगा.

प्रमाण ४९

किमर्थं पुनर्विभूषां आसेवते इत्याह-मलेण · घच्छं बहुणा उ वत्थं उज्झाइगोऽहंविमिणा भवामि। हं तस्स धोव्वाम्मि करेमि तत्ति, वरं न जोगो मलिणाण जोगो ॥ ३१२ ॥ इदं मदीयं वस्त्रं बहुमलेन प्रस्तम्-आपूरितं, अतोऽनेनाहं ' उज्झायो ' विरूपो

भवामि, यतश्चाहं विरूप उपलभ्ये ततस्तस्य वस्त्रस्य धौतव्ये तर्सिमर्हं करोमि, येन गोमूत्रादिना शुध्यति तदानयामित्यर्थः, कुत इत्याह-वरं मे वस्त्रेण सह न योगः, परं मलिनवस्त्रप्रावरणादप्रावरणमेव श्रेयः इतिभावः, कारणे तु वस्त्रं धावन्नपि शुद्धः, परः प्राह-ननु वस्त्रधावने विभूषा भवति, सा च साधूनां कर्त्तुं न कल्पते ' विभूसा इत्थिसंसग्गी ' इत्यादिवचनात्, सूरिराह कामं विभूसा खलु लोभदोसा, तहावि तं पाउणओ न दोसो । मा हीलणिज्जो इमिणा भविस्सं, पुव्विड्ढिमाई इय संजईवि ॥ ३१३ ॥
कामं-अनुमतं एतत् खलुः अवधारणे एषा विभूषा लोभदोष एव, तथापि तद्वस्त्रं शुचिभूतं कारणे कृत्वा प्रावृण्वतो न दोषः, कस्य इत्याह-पूर्वं राजादिक ऋद्धिमान् आसीत् स तादृशीं ऋद्धिं विहाय प्रव्रजितः सन् चिंतयति-मा अमुना मलाक्लिन्नवाससा अबुधजनस्य इहलोकप्रतिबद्धस्य हीलनीयो भविष्यामि यन्नूनं केनापि देवादिना शापदग्धोऽयं यदेवमेतादृशीं ऋद्धिं विहाय साम्प्रतं ईदृशीं अवस्थां प्राप्तः, आदिशब्दादाचार्यादिरप्येवमेव शुचिभूतं वस्त्रं प्रावृणोति, संयत्यपि ऋद्धिमत्प्रव्रजिता नित्यं पाण्डुरपट्टप्रावृत तिष्ठति वा ॥

भावार्थः—साधु अपने मैले कुचैले वस्त्र देख मनमें विचार क कि मैं ऐसे मलीनवस्त्रोंसे बुरा मालूम होता हूं । इसलिये इन स्वच्छ बनानेकी तजवीज करूं तो ठीक है, ऐसे विचारसे याने वस्त्रों मलीनपना अप्रिय होजानेके कारण इन्हें तात्कालिक शुद्ध कर

कोई महानुभाव राज्य ऋद्धि पाया हुवा था या वैभवशाली कोई धनिक साहूकार था और दीक्षित होगया है। उसके मनमें विचार आया कि मैं मलीनवस्त्रसे मूर्ख और अज्ञानी लोकसे हलका दिखुंगा या सामान्य लोग मेरी निन्दा करेंगे या कहेंगे कि इसको किसी देवता पिशाच ने श्राप दिया। जिससे यह एसी अनुपम अलभ्य ऋद्धि सिद्धी का त्याग कर साधु बनगया। और अब मलीन वस्त्र पहिने फिरता है। एसा भाव मनमें उत्पन्न हो। वह साधु हो या साध्वी अच्छे वस्त्र को पहिने तो दूषित नही माना जाता।

पाठक! मनन करते जाइये अब कितनेक प्रमाण आपको और बताइये। मतलब समझ में आगया होगा कि "विभूषा करने की आज्ञा न होते हुवे भी अपवाद से विभूषा करने वाले को दूषित नहीं बताया और आज्ञा दी। तो पाया गया कि जिस विभूषा मे बहुमान आता है वही विभूषा करने की आज्ञा शास्त्रकार देते हैं। और यही प्रथा बहुधा प्रचलित है। अस्तु।

महानुभाव! अब थोड़ा विचार करने बैठे तो सिद्ध होता है कि मूल सूत्र अंग उपांग में तो वस्त्र धोने की आज्ञा कहीं पाई नहीं जाती। हां, इसकी बात निर्युक्ति में अवश्य देखने में आवेगी कि वर्षाकाल के प्रारंभ में या बिमारी के समय कपड़ा साफ करने की आज्ञा निर्युक्तिकार महाराज ने दी है। तथापि भाष्यकार और चूर्णिकार महाराज वर्षाऋतु के प्रारंभ में और व्याधि के अतिरिक्त वस्त्र धोने वाले को बहुत नहीं कहते। बहुत नहीं कहते तो ना ठीक है

लेकिन यहां तक फरमादिया कि क्षारादिकसे धोने पर भी धोने वाला दूषित नहीं होता। तो जरा शांत होकर विचारिये कि रंगीन-वस्त्र पहिनने के लिये तो मूल सूत्र, भाष्य, टीका, आदि में जगह जगह स्पष्ट आज्ञा फरमाई है। और विभूषामें ही रंगनेमें बकुशपन बताया है? तो बतलाइये कि शासनरक्षा के लिये रंगीन कपडा पहिने उसमें कौनसा दोष है!

निशीथसूत्र में निर्युक्ति और भाष्यकार महाराज फरमाते हैं कि—

प्रमाण ५०

जंगिय भंगिय साणय पोत्तं च तहा तिरीडपट्टं च। वत्थं पंचविकप्पं तिविकप्पेनं पुणेक्कक्कं ॥ ७३६ ॥ उण्णोट्टि मिगलोमे कुअवे किट्टं य कीडते चेव। जंगविही अयसी पुण भंगविही होतिणायव्वा ॥७३७॥ सणमादी वागविही पोत्तविही पोण्डयं समक्खायं पट्टो य तिरीडस्सा वयाविही सा समक्खायं ॥ ७३८ ॥ पंच परू- वेउणं पत्तेयं गेण्हमाण सत्तम्मि। कप्पासिया य दोण्णि उ उण्णिय एक्को य परिभोगो ॥ ७३९ ॥ कप्पासियस्स असती वागयपट्ट य कोसियारे य। असई य उण्णियस्सा वागय कोसिय पट्टे य ॥ ७४० ॥

देखो! निर्युक्त और भाष्यकार महाराज क्या फरमाते हैं कि जांगमिक, भांगिक, सणक, पोत और तिरीड पट्ट यह पांच तरह के वस्त्र हैं। इनके एक एक के तीन तीन भेद होते हैं, और वह यूं है कि-

और्णिक, उष्ट्रलोमिक, और मृगलोमिक, कुतप और कीटज यह सब जांगमिक गीने जाते हैं। और भांगिक, अतसी भी

विगेरे छालका वस्त्र, सूत का बना हुवा पोत वस्त्र और तिरीड-की छाल का तिरीड वस्त्र, इस तरह वस्त्रों की पांच प्रकार से परूपणा कीगई। जिससे पांचों ही का ग्रहण हो जावे। इस लिये कहते हैं कि सूत का और ऊन का वस्त्र उपयोग में लेना, यदि कार्पासिक न मिले तो छाल का बना हुवा और पट्ट रेशमी वस्त्र लेना। और ऊनका न मिले तो छाल रेशमी और पट्ट का कपड़ा लेना। इस तरह पांच प्रकार के वस्त्र लेने में चारित्र का घातक नहीं बनता, इस पाठका साफ बयान निशीथ चूर्णिकार महाराज करते हैं। लेकिन यह आज्ञा जो दीगई है वह कारण से समझना चाहिये। अतएव भाष्यकार महाराज के वचनो से विपरीत कैसे चल सक्ते हैं। इसी विषय में श्रीमान चूर्णिकार महाराज का फरमान देखिये।

प्रमाण ५१

णिज्जुत्ती विच्छागति-जंगिय गाहा ॥ ७४६ ॥ जंगिय-भंगियं दोण्णि वक्काणिति, उण्णा गाहा ॥ ७४७ ॥ उण्णिएसु उण्णियं, उट्टिएसु उट्टियं, मियलोमेसु मियलोमियं, कुतव-किट्टाणि गमेज्जिमिया चेव दंसेतं इह अप्पसिद्धा, अण्णे भणंति कुतवो वरको, सो किट्टिय एतेसिं चेव अवयवो, कीडयं पटपट्टोत्ति, एते त्ति जंगमप्पभाव अवयवेहिंतो णिप्फण्णा जंगिया, अतसिमादी भंगियाविही। सणमादी, सणमादि वागो, पोंगं पोंडयं, चम्मणि णिप्फण्णामित्ति कृमं मरति, पट्टो तिरीडरुक्खस्स वागो तस्स तंतू पट्टसरिसो सो तिरीडपट्टो, एतेसिं जं अण्णं हो तं किडिपय। पच पकारण गाहा

॥ ७४९ ॥ एस भद्दबाहुस्वामिकता गाहा, पुव्वेण पंचण्हवि सरूवं परुविंत, तं ' संतम्मि ' त्ति लब्भमाणेसु, पत्तेयं पंचसुवि गेण्हमाणेत्ति, दो कप्पासिया एगो उण्णियो गेण्हियव्वो, एतेसिं परिभोगे विवच्चासो ण कज्जति, पामत्ताणं मोत्तूणं एगस्स उण्णियस्स णत्थि परिभोगो । कप्पासियगाहा ॥७५०॥ जो कप्पासियं ण लभेज्जा ताहे कप्पासियट्ठाए वागमयं गेण्हेज्जा, तस्सासइ पट्टमए गिण्हइ, तस्सासति कोसियारमयं गिण्हति, एवं कप्पासिते असइए भंगिते, जाहे उण्णियं ण लब्भति ताहे उण्णियट्ठाणे वागमयं घेप्पति, तस्सासति कोसियारमयं, तस्सासति पट्टमयं ॥

भावार्थ—श्रीमान् चूर्णिकार महाराज का कथन भी इस विषय में बड़ा मददगार है । आप फरमाते हैं कि ' जंगिय ' यह गाथा निर्युक्ति की है । और जंगिय व भंगिय इन दो तरह के वस्त्रों की व्याख्या इस तरह करते हैं कि, बकरे के रोम से बनाया हुवा और्णिक, उंट के रोम से बनाया हुआ औष्ट्रिक, मृग के रोम से बनाया हुआ मृगलोमी, कुतप और किट्ट भी एक जात के वेश हैं । और यह देशांतरमें विशेष प्रसिद्ध है इधर प्रसिद्ध नहींहै, इस देशमें कितनेक कहते हैं कि बालिकासे वस्त्र बने उसको किट्टिस कहते है, और इसी का यह अपभ्रंश होता है । परक पट्ट जिसे किट्टिस कहे जाते हैं । और यह सर्व वस्त्र त्रसजीवोंके रोमसे बनाये जाते हैं । इसी लिये इनको ' जांगमिक ' कहते हैं । सण आदि का बनाया हुवा ' वाल्कज ' कपास से बनाया हुवा कोडज, और तिरिड वृक्ष की

छाल से बनाया हुवा ' तिरीड पट्टक ' इसी तरह कीट का बनाहुवा ' किट्टीज , कहे जाते हैं ।

" पंच पश्वेऊण " यह गाथा श्रीमान् भद्रबाहुस्वामीकी बनाई हुइ है । पहले दो गाथा द्वारा पांच प्रकार के वस्त्रो की प्ररूपणा की, लेकिन वह पांच प्रकार के वस्त्र मिलते हुवे भी दो कपास के और एक ऊनका बनाया हुवा लेना । और उपयोग करने में उलटा सुलटी नहीं करना । तथापि वर्षाऋतु में वर्षादिके बचाव के लिये जैसा चाहे उलटा सुलटी कर सक्ते हैं ।

यदि कपास का वस्त्र न मिले तो सण का लेना । सण का भी न मिले तो पट्टका लेना, अगर यह भी न मिलेतो रेशमी लेना । लेकिन यह सब उस हालत में लेना कि जब कपास का वस्त्र नहीं मिलता हो.

इसी तरह ऊनके वस्त्र का अभाव हो और नहीं मिले तो वल्क का लेना, यह नहीं मिले तो रेशमी लेना । और रेशमी न मिले तो पट्ट का लेना, एसी आज्ञा दी गइ है ।

पाठक ! देखा भाष्यकार, निर्युक्तिकार और चूर्णिकार महाराज ने भी पांच प्रकार के वस्त्र सकारण लेने की आज्ञा फरमाइ है । यदि रंगदार वस्त्र लेने से चारित्र दूषित बनता तो निर्युक्तिकार, भाष्यकार , और चूर्णकार महाराज एसा क्यों फरमाते ? आगे चलते देखिये धौतरक्तादि वस्त्रों के लिये भाष्यकार महाराज क्या कह गये ? , पढ़िये !

क्षंतव्य, तथापि इतना तो अवश्य कहेंगे कि वह पाठ कोइ महानुभाव देखना चाहे अवश्य देखें। क्योंकि एक रंगका और अनेक रंगके वस्त्र के विषयमें विस्तारसे वर्णन किया गया है।

प्रमाण ५३

पढमे पंचविहम्मिवि दुविहा पडियाणीदा मुणेयव्वा।
तज्जायमतज्जाया चउरो तज्जाय इयरे वा॥

भावार्थ—इस पाठमें बतलाया है कि पांच तरहके वस्त्र लेकर उनके भंगरा (कारी) देनेकी आवश्यकता हो तो इधर वैसेही वस्त्र की देनेवाले और दूसरे रंगकी देनेवालेका विचार किया है। इस विषयमें मूल सूत्रकार क्या कहते हैं। यह देख लीजिये—

प्रमाण ५४

" जे भिक्खू वत्थं अतज्जाएण गहेइ गहंतं वा साइज्जइ " ॥
(नि. उ. १)

भावार्थ—जो साधु पांच प्रकारके वस्त्रोंमें से किसी प्रकारके वस्त्रसे वस्त्र ग्रहण करावे या करने वाले को उत्तम गिने उसको प्रायश्चित्त आता है। और पांच प्रकारके वस्त्रोंका थेगरा भी ज्यादा नहीं ने बाबत कहा है. देखिये !

प्रमाण ५५

पडियानीयाण तिण्हं परेण वत्थंम्मि देंति जो भिक्खू।
पंचण्हं अण्णयरे सो पावइ आणमाईणि॥ १॥

भावार्थ—पांच तरहके वस्त्रोंमें किसी भी तरहके वस्त्रमें जो साधु तीन वगैरे (कारी) से ज्यादा देवे उसको आज्ञा भंगका दोष लगता है । इससे साबित होता है कि यदि रंगीन वस्त्रकी पहिनने की आज्ञाही नहीं होती और पहनने से साधुपन चला जाता होता तो पांच वर्णके वस्त्रोंका और उनमें कारी देनेका बयानही क्यों करते यह पाठक खुद सोच लें।

प्रमाण ५६

पंचविहम्मिवि वत्थे दुविहा खलु सीवणा मुणेयव्वा ।

भावार्थ—पांच प्रकारके वस्त्रोंमें दो तरहकी सीवण समझना, और आगे फिर फरमाते हैं।

प्रमाण ५७

जो सिविज्जा पंचण्हं एगतरं

भावार्थ—याने पांच प्रकारके वस्त्रोंको अविधिसे सीवे तो प्रायश्चित आता है। मतलब कहनेका यह है कि सीनेका बयान करते भी पांच वर्णके वस्त्रोंका नाम आया है। इसी तरह सीवनकी गांठ देनेके लिये भी देखियेगा आप्तकार क्या कहते हैं ?

प्रमाण ५८

पंचण्हण्णतरे जो वत्थे गंठियं देज्जा ।

क्या कहते हैं कि पांच प्रकारके वस्त्रोंमें किसी भी वस्त्रमें सीवनकी गांठ देवे तो प्रायश्चित लगता है, इसी तरह तीन गांठसे ज्यादे गांठ देनेसे भी प्रायश्चित कहते भी कहा है

भावार्थ—पांच प्रकारके वर्णवाले कृत्स्नमें पहले श्याम रंगवालेको लेना, और 'तु' शब्दसे बादमें दूसरे रंगवाले लेना। और यदि रंगीन न होवे तो अपने हाथसे रंगका परिवर्तन करना। इस पाठका मतलब यह नीकलता है कि दूसरी तरहका रंगीन कपड़ा रखनेकी आवश्यकता है और यह नहीं मिलता तो अपने हाथसे रंग पलट लेवे। इसके सिवाय और क्या ? चाहिये। आगे फिर चूर्णिमें कहा है कि—

प्रमाण ६२

पंचविहे वण्णकसिणे पुव्वं कण्हं गेण्हति, तंमि असंते लोहियादि गेण्हति, तस्सवि असति तेल्लमादीहिं विवण्णं करेति॥

भावार्थ—पांच प्रकार के वर्णके जो रंग कृत्स्न है। उसमें पहले श्याम और बाद मूलरंगका लेवे, यदि वह न मिले तो तैल आदि लगाके दूसरा रंग पलट लेवे। अब इस बातको देखते सोचें तो पाया जावेगा कि जिन महानुभावको दूसरे रंगमें घृणा होती है उनको भाष्यकार महाराज पर नाराज होना पडेगा, इसलिये एकान्त हठवाद करना वृथा है। भाष्यकार महाराज तो जैसा था बयान फरमा गये।

प्रमाण ६३

जे भिक्खू वण्णमंतं वत्थं विवण्णं करेइ करंतं वा साइज्जइ.

भावार्थ—जो साधु रंगीन वस्त्र को बिगाडे अथवा बिगाडने वाले का अनुमोदन करे उसको चउमासिक प्रायश्चित्त आता है। इस

विषयमें सूत्रकार महाराजा ने स्पष्ट रूपमें फरमाचुके हैं। तथापि कोइ एकान्त आग्रह करे उनके लिये क्या किया जावे ? इस विषय में कोइ प्रश्न करे कि--

(प्रश्न) जैन शास्त्रमें सर्व प्रकार के याने रंगीन वस्त्र भी पहिनने की आज्ञा है। एसा माना जावे तो फिर जैन साधु के लिये अचेलक पन किस तरह रहसक्ता है। क्योंकि अचेलकपन तो श्वेत वस्त्र होवे तबही माना जाता है।

(उत्तर) इस शंका के समाधान में तर्कसे कल्पना कर उत्तर देनेसें तो प्रमाण सहित उत्तर देनाही ठीक होगा, पाठक महोदय! इस विषयमें "विशेषावश्यक" में भाष्यकार अचेलकपन के निरूपणमें क्या लिखते हैं सो पढियेगा।

प्रमाण ६४

जह भत्ताइ विसुद्धं रागद्दोसरहिओ निसेवंतो। विजिय-दिगिंछाइपरीसहो मुणी सपडियारोवि ॥ २५९६ ॥ तहचेलं विसुद्धं रागद्दोसरहिओ सुयविहीए । होइ जियाचेलपरीसहो मुणी सेवमाणोवि ॥ २५९७ ॥ सदसंतचेलओऽचेलगो य जं लोगसमयसंसिद्धो। तेणाचेला मुणओ संतेहिं जिणा असंतेहिं ॥ २५९८ ॥ परिसुद्धजुण्णकुच्छियथोवाऽनिययन्नभोगभोगेहिं । मुणओ मुच्छारहिया संतेहिं अचेलया होंति ॥ २५९९ ॥ जलमवगाहंतो बहुचेलोवि सिरवेढियकडिल्लो । भण्णइ

नरो अचेलो तह मुणओ संतचेलावि ॥ २६०० ॥ तह थोव-
जुण्णकुच्छियचेलेहिवि भण्णए अचेलोत्ति । जह तूर सालिय !
लहुं दो पोत्तिं नग्गियामोत्ति ॥ २६०१ ॥

भावार्थ—इस पाठमें साफ तौरसे बताया गया है कि राग
द्वेष रहित यत्नसे भोजन आदि लेनेवाला साधु सप्रतिकार होते हुवेभी
क्षुधादि परिषह को जीतनेवाला होता है । इस तरह राग द्वेष रहित
मुनि शास्त्रोक्तविधियुक्त शुद्ध वस्त्रको काममें लेता है । तथापि अचे-
लकपरिषह को जीतने वाला होता है ॥ २५९६ ॥ २५९७ ॥
लोक और शास्त्रमें वस्त्र होते अथवा नहीं होते हुवेभी अचेलकपन
सिद्ध होना बतलाया है । इस सबब से मुनि वस्त्र होते हुवे भी
अचेलक हैं । और तीर्थंकर वस्त्र रहित पनेसे अचेलक हैं ॥२५९८॥
शुद्ध, जीर्ण-पुराने-असार अथवा कमती और अनियमित पहिनने
से किंवा दूसरी तरह पहिनने से मूर्छा रहित मुनि अचेलक की कोटी
में गीने जाते हैं ॥ २५९९ ॥ जीस तरह पानी में चलता हुवा मनुष्य
यद्यपि वस्त्र पासमें होते हुवे भी, पहिनने का वस्त्र अपने मस्तक पर
लपेट लिया हो वह वस्त्र सहित है तथापि अचेलक गिना जाता
आया है । इसी तरह मुनिराज भी वस्त्र सहित हैं, तथापि अचेलक
हैं ॥ २६०० ॥ २६०१ ॥

महानुभाव ! ऊपर जो पाठ बतलाया गया इस में श्रीमान्
भाष्यकार महाराजने श्वेत वस्त्रका नाम भी इशारा नहीं बतलाया ।

चेलैस्तथाविधवस्त्रकार्याकारणात् तेषु मूर्च्छाऽभावाच्च मुनयोऽचेलका व्यपदिश्यन्त इति इह तात्पर्यम् ॥ [illegible] ॥

भावार्थ—मूर्छा रहित साधू वस्त्र होते हुवे भी उपचारसे अचेलक होते हैं। लेकिन वस्त्र कैसे? दोष रहित हो, अल्प कीमतके असार, स्वल्प, जुन्ड वस्त्र चाहिये, कदाचित उपयोगमें [illegible] लौकिक [illegible] दूसरी तरहके वस्त्र वापरनेसे, असार, स्वल्प [illegible] वस्त्र होते हुवे लोकमे अचेलकपन सिद्ध है। उदाहरण [illegible] से पानीमे उतरता हुवा मनुष्य नग्न कहा जाता है। साधु महाराजको भी कच्छ नहीं लगानेसे, दोनों कुणीयोंसे चोलपट्टा धारण करनेसे व मस्तक उपर कपडा नहीं ओढने से, स्पष्ट सिद्ध होता है कि वस्त्रका उपयोग संसारी मनुष्योंसे बिलकुल उलटा है, इसलिये शुद्ध वस्त्र होनेहुए भी वस्त्रकी आवश्यकता नहीं होनेसे और मूर्छा रहित होनेसे अचेलक गिनेजाते हैं। इस भावार्थमें स्पष्ट सिद्ध हुवा कि टीकाकार महाराजने भी भेदवस्त्रसे ही अचेलक पन है ऐसे नहीं फरमाया। इसीविषय मे श्रीमान् हरिभद्र सूरिजी महाराज "धर्मसंग्रहणी" मे क्या फरमाते हैं पढियेगा।

प्रमाण ६६

परिजुण्णमप्पमुल्लं समणुण्णातं जओ जिणिंदेहिं।
दायारस्सवि पीडा न होइ [illegible] स ॥

भावार्थ—पुराने थोडी कीमतवाले वस्त्र पहिननेकी तीर्थंकर भगवानने आज्ञा दी है । और आज्ञानुकूल वस्त्र देनेवाले दातारको पीडा नहीं होगी ।

प्रमाण ६७

परिजीर्णमल्पमूल्यं तद् वस्त्रमनुज्ञातं यतो जिनेन्द्रैस्तास्मादिह दातुरपि वस्त्रं ददतः पीडा न भवतीति !!

श्रीमान् मलयगीरिजी (धर्मसंग्रहणी)

भावार्थ—जीर्ण-पुराने थोडी कीमतके वस्त्रकी आज्ञा भगवानने फरमाइ है । और ऐसेही वस्त्र देनेवाले दातारको किसी तरहका दुःख नहीं होता । इन दोनों प्रमाणोंमें श्वेतवस्त्रका नाम नहीं आया । आगे फिर श्रीमान मलयगिरिजी फरमाते हैं कि—

प्रमाण ६८

परिजीर्णाल्पमूल्यवस्त्रमात्रादपि केषांचिन् साधूनां तद्‌त्ति-सक्ता विभूषा कर्त्तव्यतया भवति.

भावार्थ—परिजीर्ण और कमकीमतके वस्त्र मात्रसे कितनेक साधुओंको विभूषा कर्त्तव्य होजाती है ।

प्रमाण ६९

संजमजोगनिमित्तं परिजुण्णादीणि धारयंतस्स । कह ण परिस्स (रीम) इमहणं ? जइणो गइ निग्गममग्ग ॥१०५०॥

भावार्थ--संयम पालनेके हेतु निरंतर ममता रहित मुनिराजको आदि वस्त्र पहिनते परिषह सहन किया माना जाता है, इस प्रमाणोंसे जैन शास्त्र भरपक है। इसी विषय का विशेष करते मलयगिरीजीकी टीकामें फरमाया है कि—

प्रमाण ७०

यमयोगनिमित्तं परिजीर्णादीनि--परिजीर्णाल्पामूल्यादि वस्त्राणि धारयतः सतो यतः सदा निर्ममत्वस्य कथं न सहनं सहनमेवेतिभावः ॥ १०६० ॥

भावार्थ--संयमयोगकी साधनाके लिये जीर्ण अल्पमूल्य आदि वाले वस्त्रको धारण करनेवाले मुनिको निरंतर निर्ममत्वपन परिषह सहनशीलपना कहा जाता है।

प्रमाण ७१

उपचरितम्-अल्पमूल्यजीर्णवस्त्रपरिभोगेच (मलयगिरिजी.)

भावार्थ--मलयगिरिजी माहाराज फरमाते हैं कि, थोडी कीमत य और जीर्ण वस्त्रके परिभोगसे उपचरित अचेलकपन होता है

प्रमाण ७२

अपिच, यदि स्थूले वाससि परिजीर्णे यतः कुतश्चिदपि लभ्ये संभाव्येत ततो दुर्लभतरे अस्मिये शरीरे सुतरां मूर्छा नीया।

आगमनीत्याऽपि अचेलत्वमुच्यत एव । यदाह- " परि-
दरेगेहि होक्खामित्ति अचेलए । अदुवा सचेलए होक्खं
मू न चिंतए "

भावार्थ–जिस वस्त्रका विशेष मूल्य न हो और वह खंडित
हो वैसे वस्त्रसे अचेलक पन होता है । वस्त्र सहित वाली
अचेलकपन क्यों ? इस तरह की शंकाके समाधानमें कहते
लोक और आगमके न्यायसे ही अचेलकपन सिद्ध है, वही
योग्य होती है । जैसे लोक जीर्णादि वस्त्र होते हुवेभी अचेलक
ते हैं, और माननेका कारण है, क्योंकि विशिष्ट अर्थको
धने वाली वस्तु होने परभी नही होने तुल्य है । अतएव इस
अचेलकपन कहा है । और इसकी विशेष साक्षी उत्तराध्यय-
फरमाई है । कहा है कि वस्त्र आदि जीर्ण होनेसे मैं अचेलक
। अथवा जीर्ण देखकर कोई अच्छे वस्त्र देनेकी भावना
तो मैं सचेलक होजाउंगा ऐसा विचार कदापि न करे ।

प्रमाण ७५

गमुप्पायणाएमणाए जदि हुंति अपरिसुद्धाइं ।
ल्लगरु आणि ताणि तु अपरिजुन्नाइं चेलाइं ॥ १ ॥
(पंचकल्पभाष्य)

भावार्थ–उद्गम उत्पादना, और एषणासे शुद्धता पूर्वक न होवे
विशेष मूल्यवाले-कीमती हो, और जीर्ण न हो, वह सचेल
ता है । पंचकल्प भाष्यकार महाराज भी सचेलकाम वर्णैस

प्रतिपादित नहीं करते हैं। अशुद्धता विशेष मूल्य वाला, और न
इन तीन प्रकार के वस्त्रोंमें सचेलकपन फरमाते हैं।

प्रमाण ७६

" अहापरिमेहिं अप्पेहिंवि विहरंतो होति अचेलो उ परिजुण्णे
भावार्थ-शुद्ध अल्प और जीर्ण वस्त्रमें अचेलकपन होता है।

इतना पढने बाद यह शंका तो अवश्य उत्पन्न होगी कि "कल्पसू
की टीका करनेवाले महात्मा और पंचाशक टीकाकार श्रीमा
अभयदेवसूरीश्वरजी महाराज आदि महान् पुरुषोंने अचेलकके अर्थ
" श्वेत मानो पेत जीर्ण प्राय अल्पमूल्य विशेषणवाला वस्त्र क
है वह किस तरह कहा है? इसके समाधानमें कहना होगा कि—

उन महात्माओंने श्वेतशब्द विवेचन [illegible]
है। और उस समय वेष में नियमित श्वेतपन हो भी गया था, [illegible]
लक्षण तो भाष्यकार महाराजादि बतलाते हैं [illegible]
मानने योग्य होता है। क्योंकि श्वेतवस्त्र होते [illegible]
वाले बहु मूल्य और नये वस्त्र होवे तब [illegible]
क्योंकि नये वस्त्रोंमें और विशेष मौल्य [illegible]
नहीं होसक्ता, ऐसा आगम मंतव्य है।
लक्षण तो अन्वय व्यतिरेकसे बहु मूल्य,
होता है। ऐसे सामान्य वाक्योंसे अपने
लक्षण प्रणेता बन जाना और शासन
देखना यह हमारा काम नहीं है।

(प्रश्न) आदिसे लेकर अब तकके आगम प्रमाणोंमें रंगीन वस्त्र धारन करनेकी व रंगीन वस्त्रको मलीन नहीं करनेकी आज्ञा मालूम होती है। और श्वेतपन अचेलकपनके लक्षण में नहीं है। तथापि एक भी आगम ऐसा नहीं कहता कि वस्त्र रंगना। विभूषाके निमित्त भी वस्त्र रंगा जावे तो, विभूषाके लिये धोनेमें जो प्रायश्चित बतलाया है उसी तरह प्रायश्चित और बकुशपन होना चाहिये। इसको सिद्ध करनेके लिये "भगवतीसूत्र जीवसमास, तत्त्वार्थ" आदि देखना चाहिये।

(उत्तर) महानुभाव ! रंगीन वस्त्र पहिनने में दोष नहीं है, और इसी विषय को स्पष्ट समझानेके लिये बहुत से पाठ दिये गये हैं। मनन पूर्वक अवलोकन किया जावे और पक्षपात रहित हो न्याय दृष्टिसे भावार्थ समझा जावे तब आपको मालूम होजायगा। क्योंकि अब तकके पाठोंमें यही बताया गया है कि रंगीन वस्त्रमें दोष नहीं हैं। लेकिन प्रश्नकार के कथनानुसार केवल विभूषाके लिये वस्त्र रंगीन बनावे तो वह बकुशकी कोटी में गिना जावेगा, तो समझना चाहिये कि श्वेत वस्त्र पहिनने वाले क्या कुशील, पुलाक, निर्ग्रंथ या स्नातक हैं? कदापि नहीं। क्योंकि कुशीलपन तो बकुश से भी हलका गीना जाता है। और पुलाक, निर्ग्रन्थ, तथा स्नातक यह दरजा तो वर्तमान में है ही नहीं तो उन को कहां से आयगा?

दूसरी तरह इस विषय को स्पष्ट करें तो कहना पड़ेगा कि, चौमासे पहले वस्त्र को धोने सिवाय जो बार बार धोते हैं, वह

विभूपा के लिये रंगीन बनानेवालेकी तरह बकुशकी कोटीमें क्यों नहीं गीनाजवे ? वर्षा ऋतु के पहले आचार्य, ग्लान साधुओं को वस्त्र धोनेकी आज्ञा देनेवाला के पाठको समझाते समय अपना बकुशपना छिपाने को बार बार कहा करते हैं कि शास्त्रों में " धोनेकी आज्ञा है । धोनेकी आज्ञा है । " एसा कथन कर अपने भक्तों को पहिचान करवाते हैं । जीसमें भी आज कल तो कपडा धोनेका रिवाज व साबू सोडा काम मे लेनेकी प्रवर्ती कीतनी बडी हुइ है वह जैनशासनके ज्ञाताओं से छिपी नहीं है । शास्त्रों में उन्मत्तो के लिये स्पष्ट फरमाया है कि प्रमत्तोंको अस्नान व मलीन वेप शोभास्पद होता है । " मलीनस्तु प्रमत्तानां " याने मलीन वस्त्र वर आदमीयों के होते हैं । एसा जो कथन करते हैं । वह जैन शास्त्र मे अनभिज्ञ है । क्योंकि साधु धर्म तो विभूपा का त्याग बतलाता है और जो शरीर की विभूपा में ही दत्तचित्त रहते हैं वह साधु धर्म की पालना से अनभिज्ञ है ।

पाठको समज में आगया होगा कि जो साधु शरीर शोभाके लिये वस्त्रके रंगीन बनावे वह बकुश की गीनती में है, लेकिन जो मुनि केवल चारित्र पालने के लिये आज्ञानुसार रंगीन व वे उनकों कोई भी बकुशकी कोटीमें नहीं बतलाता । और यूं तो साधुओंके पात्र भी रंगीन होते हैं और पात्र रंगने की आज्ञा ' ओघनिर्युक्ति ' ' पिंड निर्युक्ति ' में स्पष्ट तौर से फरमाइ हैं । और साथ में यही भी बयान किया है कि जो साधु पात्र को रंगीन न बनावे वह अपने

आपको दूषित बनाता है। और फिर हरते हैं तो निशीथसूत्र के अठारवें उद्देश्में बयान कियाहै कि—

प्रमाण ७७

जे भिक्खू चोद्दसमे उद्देसे पडिग्गहए जो गमो भणिओ सो चेव इह वत्थेण नेयव्वो जाव वासावासं वसइ वसंतं वा साइज्जइ। नवर णिक्कोरणं णत्थि

भावार्थ—इस सूत्रके चवदवें उद्देशमें पात्रके लिये जो अधिकार प्रतिपादन किया है वही वस्त्रके लिये लेना चाहिए। पात्रको रंगीन बनानेमें दोषित नहीं बनते इसी तरह वस्त्रके लिये भी अधिकार समझना, यह ऊपर बताये गये हैं।

प्रमाण ७८

जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

भावार्थ—जो मुनि सुंदर रंगवाले पात्रको खराब कर दे याने रंग बिगाड डाले, अथवा ऐसा करनेवालेका अनुमोदन करे तो चउमा सिक प्रायश्चित आता है। इस अधिकारको पढ़ने यह सिद्ध होता कि पात्र यदि रंगीन रखना उचित न होता तो रंगीन पात्रका वि किस तरह करते। पाठक ! यदि आपने शंका करें, रंगीन विवर्ण करने में प्रायश्चित बतलाया तो विवर्णको वर्णवाले करनेमें ... ऐसा चाहिये। इस के समाधान में इसी उद्देश्में लिखा

विभूषा के लिये रंगीन बनानेवालेकी तरह बकुशकी कोटीमें क्यों नही गीनाजवे ? वर्षा ऋतु के पहले आचार्य, ग्लान साधुओं को वस्त्र धोनेकी आज्ञा देनेवाला के पाठको समझाते समय अपना बकुशपना छिपाने को बार बार कहा करते हैं कि शास्त्रों में " धोनेकी आज्ञा है । धोनेकी आज्ञा है । " एसा कथन कर अपने भक्तों को पहिचान करवाते हैं । जीममे भी आज कल तो कपडा धोनेका रिवाज व मात्रू सोडा काम मे लेनेकी प्रवर्ती कीतनी बडी हुइ है वह जैनशासनके ज्ञाताओं से छिपी नही है । शास्त्रों में उन्मत्तो के लिये स्पष्ट फरमाया है कि प्रमत्तोंको अस्नान व मलीन वेष शोभास्पद होता है । " मलीनस्तु प्रमत्तानां " याने मलीन वस्त्र बुरे आदमीयों के होते हैं । एसा जो कथन करते हैं । वह जैन शास्त्र से अनभिज्ञ है । क्योंकि साधु धर्म तो विभूषा का त्याग बतलाता है और जो शरीर की विभूषा में ही दत्तचित्त रहते हैं वह साधु धर्म की पालना से अनभिज्ञ है ।

पाठकों समज में आगया होगा कि जो साधु शरीर शोभाके लिये वस्त्रके रंगीन बनावे वह बकुश की गीनती में है, लेकिन जो मुनि केवल चारित्र पालने के लिये आज्ञानुसार रंगीन बनावे उनकों कोई भी बकुशकी कोटीमें नही बतलाता । और यू तो साधुओंके पात्र भी रंगीन होते हैं और पात्र रंगने की आज्ञा 'ओघनिर्युक्ति' 'पिंड निर्युक्ति' में स्पष्ट तौर से फरमाइ हैं । और साथ में यही भी बयान किया है कि जो साधु पात्र को रंगीन न बनावे वह अपने

आपको दूषित बताता है। और फिर देखते हैं तो 'निशीथसूत्र के अठारवें उद्देशेमें बयान कियाहै कि—

प्रमाण ७७

एवं चोदसमे उद्देसे पडिग्गहए जो गमो भणिओ सो चेव इहं वत्थेण नेयव्वो जाव वासावासं वसइ वसंतं वा साइज्जइ। नवरं णिक्कोरणं णत्थि

भावार्थ—इस सूत्रके चवदमें उद्देशेमें पात्रके लिये जो अधिकार प्रतिपादन किया है वही वस्त्रके लिये लेना चाहिए। पात्रको रंगीन बनानेमें दोषित नहीं बनते इसी तरह वस्त्रके लिये भी अधिकार समझना, यह उपर बताये गये हैं।

प्रमाण ७८

जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेइ करंतं वा साइज्जइ।

भावार्थ—जो मुनि सुंदर रंगवाले पात्रको खराब कर दे याने रंग बिगाड डाले, अथवा ऐसा करनेवालेका अनुमोदन करे तो चउमासिक प्रायश्चित्त आता है। इस अधिकारको पढते यह सिद्ध होता है कि पात्र यदि रंगीन रखना उचित न होता तो रंगीन पात्रका विवर्ण किस तरह करते। पाठक! यदि आपने शंका करदें, रंगीन को विवर्ण करने मे प्रायश्चित बतलाया तो विवर्णको वर्णवाले करनेमें भी दोषित होना चाहिये। इस के समाधान में इसी उद्देशेमें लिखाहै कि

प्रमाण ७२

जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेइ करंतं वा साइज्जइ

भावार्थ— जो साधु विवर्ण याने बिना रंगवाले पात्रको रंगीन बनावे या रंगिन पात्र करनेवालेका अनुमोदन करे उसको चौमासिक प्रायश्चित्त आता है।

उपरोक्त कथनानुसार पात्रको रंगिन न करना चाहिये। कदापि कोइ मुनि करे तो चौमासिक प्रायश्चितका दोषित बनता है। अतः एव पात्रको रंगीन बनानेमें दोष है तो वस्त्रको रंगीन बनाने में क्यों नहीं होता ?

प्रमाण ८०

घुट्टग डगलग लेवो ॥

भावार्थ-पात्रको लेपनकर कोमलता लानेके लिये पाषाणसे घोटते हैं। और स्थण्डिल जानेके बाद जो पाषाणादिके टुकडे पेरसर साफ करने के वास्ते लिये जाये उसको डगल कहते हैं, और भोगपुरके पत्थर विगेरेसे जो लेप बनता है उसे तुंबपात्रमें देते हैं वह लेपके नामसे प्रसिद्ध है। इस वचन से सिद्ध होता है कि पात्रका लेप करना और बादमें घोटना साधुके लिये दोष वाला नहीं है। अगर होता तो निर्युक्तिकार क्यों फरमाते ? इसी विषयमें श्रीमान मलयगिरिजी महाराज भी टीकामें फरमाते हैं कि.

प्रमाण ८१

यो घुट्टको-लेपितपात्रमसृणताकारकः पाषाणो, ये च डगलकाः पुरीषोत्सर्गानन्तरमपानप्रोञ्छनपाषाणादिखण्डरूपा यश्च लेपो भोगपुरपाषाणादिनिष्पन्नस्तौम्बकपात्राभ्यन्तरे दीयते ॥

—लेप किये हुवे पात्रको जिस पत्थर से घीसने पर आती है, उसको घुट्टक कहते हैं। स्थंडील जाने बाद जिस टुकडे से पूंछते हैं वो डगल कहे जाते हैं। तथा भोगपुरके लेपक पात्रके भीतर किया जाता है उसको लेप इसी टीका में बयान है कि—

प्रमाण ८२

स च लेपमधिकृत्योपदर्श्यते—इहाक्षस्य धुरि प्रक्षिप्त
रजोरूपः पृथिवीकायो लगति, नदीमुत्तरतोऽप्कायः ले
मयात्रपनघर्षणे तेजस्कायः यत्र तेजस्तत्र वायुरिति वायुका
ऽपि वनस्पतिकायो भूरेव द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सम्पातिमाः सम
वन्ति, महीष्यादिचर्मवयनादिकादेश घृष्यमाणस्यावयवस
पंचेन्द्रियपिण्डः। इत्थम्भूतेन चाक्षस्य व्यञ्जनेन लेपः क्रि
इत्यसावुपयोगी ॥

भावार्थ—(मिश्रपिंड) लेपका अधिकार बताते गाडी
पइया के कीटको लेप में काम लेने वालेको विचार करना चाहि
कि प्रथम तो उसमें रजरूप पृथ्वीकाय लगता है। द्वितीय नदी उतर
पानी अप्काय लगता है। तीसरे लोहे की लाठ (धूरा) घीसने
अग्निकाय लगता है, और जहां तेजका प्रभाव है वहां वायु होना
चाहिये. और फिरता हुवा पइया स्वयं वनस्पतीकायका बना है
बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, जीव उसमें गीरनेका संभव है
इसके सिवाय भैंस आदि के चमडेकी नाडीका घर्षण होता
सो यह सर्व पंचेन्द्रिय पिंड होजाता है। ऐसे गाडीके पइये क
कीट लेकर जो लेप करता है, उससे यह उपयोगी है. इस
विवरण से यह सिद्ध होता है के श्याम रंग वाला पात्र बनानेकी
सनातन है। और निशीथसूत्रमें रंगीन पात्र बनानेका जो

निषेध कियाहै वह अपरिकर्मकी अपेक्षासे है, और शोभाकारक बनानेके लिये याने विभूषा निमित्त न होना चाहिये ऐसा भावार्थ का है। इस तरहकी आज्ञा वस्त्रके लिये समझना चाहिये। जब कि पात्र रंगीन बनाने में दोष नहीं है तो वस्त्रमें भी न होना चाहिये। तथापि एकान्त आग्रह करनेवाले महानुभाव शासनकी निंदा करानेके कारणभूत बनकर हठवाद नहीं छोडते उसके लिये क्या किया जावे? क्योंकि इस समय उस तरहसे कितनेक व्यक्ति वस्त्र का रंग परावर्तनमें दोष मानते हैं. इसी तरह पहले पात्रको रंगीन बनानेमें भी कैयक व्यक्ति दोष मानते थे, इसका अधिकार भी "ओघनिर्युक्ति" में प्रतिपादित है, देखिये !

प्रमाण ८३

अच्चकालिअलेवं भणंति लेवेमणा नथि अ दिट्ठो। ते वत्तव्वा लेवो दिट्ठो तेलुक्कदंसीहिं ॥ ३७३ ॥ आया पवयण संजम उवघाओ दीसई जओ तिविहो। तम्हा वदंति केई न लेवगहणं जिणा बिंति ॥ १९२ ॥ रहवडण उभिमंगाइभंजणं चट्टणे य करपाओ। अह आयविराहणया जक्खवुड्डिहणे पवयणंमि ॥ १९३ ॥ गमणागमणे गहणे तिट्ठाणे संयमे विराहणया। महि सरि उम्मुग हरिआ कुंथू मागं रओ य सिया ॥ १९४ ॥ दोसाणं परिहारो चोयग ! जयणाइ कीरई तेसिं। पाए उ अलिप्पंते ते दोसा हुंति णेगगुणा ॥ १९५ ॥ (ओघनिर्युक्तिः)

भावार्थ-कितनेक महानुभाव कहते थे कि पात्रको रंगीन बनाना नवीन पद्धती है। क्योंकि शास्त्रोंमें जीम तरह पात्रएषणा का बयान किया है. इस तरह लेपएषणा का बयान देखने में नहीं आता। ऐसी शंका के उत्तर में निर्युक्तिकार महाराज फरमाते हैं कि हे महानुभाव! आपकी शंका निर्मोल्य है। यदि आप हम जैसे न जाने तो ठीक, परंच लेपएषणा त्रैलोक्यदर्शी भगवानने अपने ज्ञानमें देखी है। तथापि लेपसे विरुद्ध पक्ष कहते हैं कि पात्रका लेप करनेमें, आत्मा प्रवचन और संयम इन तीनोका उपघात होता है। और इन तीनों प्रकारका उपघात प्रत्यक्ष दृष्टीगत होता है। इस कारणसे तीर्थपतिनाथने लेपग्रहण करनेको नहीं फरमाया। इसपर विशेष विवेचन करते कहते हैं कि देखो! शकट आदि गीरनेमे मस्तक फू[illegible] जाताहै। और रंगको पीसने से हाथ किंवा उंगलीमें छाला [illegible] है। ऐसा कष्ट आत्मा विराधना नहीं [illegible] क्या माना जावे?। [illegible] तरह गाडीकी मली आदिको कुत्ते [illegible] पर लघुशंका [illegible] हैं, वैसा कीट याने मली लेपके [illegible] और [illegible] आचारकी निंदा होना संभव है। [illegible] प्रवचन [illegible] धना भी होती है। इसी तरह [illegible] विशेष आजावे तो परठनेमें संयम [illegible] और [illegible] समय तो सचित पृथ्वी, नदी, [illegible] विराधना होती है। और इस [illegible] लित है। पाठक याद रखियेगा कि [illegible] बेसमझ लोक हठवाद करते हैं इसी

लिये हठवाद करनेवाले भी कम नहीं थे, तथापि निर्युक्तिकार तो स्पष्टरूपमें न्याय बताते ही रहे। हे पूर्व पक्ष ! जयणामें आपके कहे हुवे दूषणका परिहार हो सक्ता है। लेकिन पात्रको रंगीन न बनाया जावे तो दूषित बनते हैं। इसी तरहसे जयणा-युत वस्त्र रंग परिवर्तन करनेमें भी दोष नहीं बताया, देखिये ? निशीथभाष्यकार भी पृथ्वीकाय का उपयोग दिखाते लेप कहते हैं

प्रमाण ८४

इगलग मरवग कुडमुइ मत्तगतिग लेव पादलेहणिया।

भावार्थः—उसके पाठसे यह सिद्ध होता है कि पात्रको रंगने में जो प्रायश्चित है। वह केवल रंग से नहीं है, लेकिन शोभा आदि कारणसे है। इसके लिये भाष्यकार विशेष फरमाते हैं,

प्रमाण ८५

मा णं पडो हरिस्सति तेणाइहरंति सामि मा जाणे।
वण्णं कुणति विवण्णं विवण्ण हरणं णवरि नत्थि ॥

भावार्थः—अच्छे रंगीन पात्रको चोर ले न जाय। अथवा कोइ गुमरीतिसे लाकर साधु को देवे और लेने वाला साधु इसलिये रंग परिवर्तन करे कि असल मालिक को पहिचान न हो सके, इसी तरह विवर्ण वस्त्र करनेमें भी समझना। जो कोइ चोरीसे

भगने या शोभाके लिए रंगना करे तो प्रायश्चित्त बताया गया है। अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं है। और इसी कारणसे अनुयोगकार महाराजने पात्र रंगीन बनानेकी आज्ञा दी है।

प्रमाण ८६

तम्हा उ अपरिकम्मं पादमहालद्द परिहरे भिक्खू ।

भावार्थः—संस्कार न करना पडे ऐसा योग्य पात्र मिल जाये वही काममें लेना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि रंगीन पात्र या रंगका निषेध ही समझा जावे। क्योंकि रंगीनके बाबत जो पहिला सूत्र बताया गया है, वह बेकाम हो जायगा और उसी फरमानके अनुसार पात्रको रंगनेके लिये " अपरिकर्म " सिवायमें अधिकार है। उसी तरह वस्त्रके लिये भी समझना चाहिये। इसी-लिये भाष्यकार का कथन है।

प्रमाण ८७

चोद्दसमे उद्देसे पादम्मिवि जो गमो समक्खाओ। सो चेव निरवसेसो वत्थम्मिवि होति अट्ठारे ॥ १ ॥

भावार्थः—निशीथसूत्रके चउदमें उद्देशेमें पात्रके लिये जो अधि-कार है, वही सारा अधिकार इस अट्ठारमें उद्देशेमें वस्त्र विषयक लेना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि पात्र रंगीन होता है तबही काममें लिया जाता है।

प्रमाण ८८

परिभोग मा पओग्गे स परिकम्मेइ बितियपदं ।

भावार्थः—परिभोगके लायक जो पात्र न हो उसका संस्कार करना चाहिये. इस विषयको विशेष स्पष्ट करते हुवे भाष्यकार महाराज फरमाते हैं कि

प्रमाण ८९

वण्णिम चिंघण करणे विवण्णमंतस्स वण्णकरणे य । जे उस्सग्गे दोसा कारणे ते चेव जयणाए॥१॥

भावार्थः—विवर्णको रंगीन बनाना या चिन्ह वाला करना अथवा वर्णकरनेमें उत्सर्गपक्षसे दोष माना गया है, लेकिन अपवादसे जयणा सहित करनेसे निर्दोष होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण करते चूर्णिकार फरमाते हैं कि

प्रमाण ९०

वण्णविवच्चासकरणे जे उस्सग्गे दोसा भणिवा, कारणे गहियं वण्णड्ढं मा हीरहिचि विवण्णं करें तो जयणाए सुद्धो

भावार्थः—वर्णका विपर्यास करनेमें उत्सर्गसे जो दोष बतायेहैं, उसीको कारण युक्त-याने लिये हुवे रंगीन-वस्त्रादिको कोइ-चोर कर न लेजावे, इस हेतुसे जयणा सहित विवर्ण करे तो ... ना

विराधना होती है। प्रातिहारिकमें भिक्षाके समय भोजन लिया होवे या न लिया होवे. और पात्रको खोलना पड़े तो दोनों तरहकी विराधना मानी गइ है। और लक्षण रहितमें पहलेही दोष बतला दिये हैं। इतना बयान करके भी भाष्यकार अपवाद दिखाते हैं कि, उपद्रव, ऊनोदरी, राजद्वेष, भय, बिमारी, शैक्षक, चारित्र और जानवर का भय होवे तब यतनासे अनल, अस्थिरादि पात्रको भी ग्रहण करे। पाठक! इस भाष्यकी गाथामें रंगका नाम तक भी नहीं है और शंकाकारने अंतिम गाथाका पूर्वार्द्ध वर्णके अधिकारमें लगाया, अतएव शंकाकार का यह कथन मिथ्या और अप्रमाणिक है। इस ही विषय को और भी स्पष्ट करते चूर्णिकार फरमाते हैं कि

प्रमाण १४

जम्हा एवमादिदोसा तम्हा अलं थिरं धुवं धारणिज्जं धारेयव्वं, अववादतो अणलादियावि धरेयव्वा, असिवे गाहा ॥१५९॥ एते असिवादिया मायणभूमिए होज्जा, अंतरा वा, जयणाए गेण्हिज्जति, का जयणा! इमा-चत्तारि मासे अहाकडं गवेसेज्ज दो मासे अप्पपरिकम्मं बहुपरिकम्मं दिवड्ढंति·

भावार्थः-जिससे प्रथम कहे हुवे दोष हैं उससे समर्थ स्थिर, ध्रुव और लक्षणवाला पात्र धारण करना चाहिये, और अपवादसे अनल वगैरह भी धारण करना, इसी अपवादको दिखानेके हेतु " असिवे " की गाथा बताइ गई।

तु पदाणं भयणा पण्णरसिया उ कायव्वा । एत्तो ए
गेण्हंताणादिणो दोसा ॥ १५५ ॥ पढमे भंगे चउरो लहुगा
सु तेसु भयणाओ । जा पण्णरसमो भंगो तेसु उ सुत्तंतिमो
॥ १५६ ॥ अद्धाणादी अगले अदेंत देंतस्स उभयओ हाए
अथिर वेहे मग्गंते हाणेसण बंधणे चरणं ॥ १५७ ॥ अधु
भिक्खकाले गहियागहियम्मि मग्गणे जं तु । दुविधा विरा
पुण अधारणिज्जंम्मि सुत्तुत्ता ॥ १५८ ॥ असिवे ओमोद
रायदुट्ठे भये व गेलन्ने । सेहे चरित्त सावय भए व जय
गेण्हेज्जा ॥ १५९ ॥

भावार्थः—अपर्याप्त होवे उसको अलल पात्र समझना, ज
हो उसको अस्थिर समझना, और थोडी मुद्दतके लिये ग्रहण क
हो तो उसको अध्रुव समझना, और विपरीतलक्षण वाले पात्र
अधारणीय याने धारण करने योग्य नहीं है ऐसा समझना,
पदोंके संयोगसे (१५) पंद्रह भांगे लेने हैं । इन पंद्रहा भांग
से एक भी भांगेसे पात्र लेनेवालेको आज्ञा भंग दोष लगता है
इन भांगोंमें प्रथम के चार भंगेमें लघु प्रायश्चित्त बताया है । अ
बाकीके भांगेमें भजना समझना यावत् पंद्रहवें (१५) भांगे त
प्रायश्चित्त लेना चाहिये । इसके लिये यह सूत्र फरमाया है । औ
सोलहवां भांगा शुद्ध बतलाया है । क्योंकि अपर्याप्तमें अद्धान मार्ग
देना या नहीं देना दोनोंमें हानि है । अस्थिर पात्र होवे तो मार्ग
ढूंढते एषणाकी हानि होती है, कर्म बंधन होता है और चारित्रक

विराधना होती है। प्रातिहारिकमें भिक्षाके समय भोजन लिया होवे या न लिया होवे, और पात्रको खोजना पड़े तो दोनों तरहकी विराधना मानी गई है। और लक्षण रहितमें पहलेही दोष बतला दिये हैं। इतना बयान करके भी भाष्यकार अपवाद दिखाते हैं कि, उपद्रव, ऊनोदरी, राजद्वेष, भय, बिमारी, शोषक, चारित्र और जानवर का भय होवे तब यतनासे अनल, अस्थिरादि पात्रको भी ग्रहण करे। पाठक! इस भाष्यकी गाथामें शंकाका नाम तक भी नहीं है और शंकाकारने अंतिम गाथाका पूर्वार्द्ध बगैरके आवादमें लगाया, अतएव शंकाकार का यह कथन मिथ्या और अप्रमाणिक है। इस ही विषय को और भी स्पष्ट करते चूर्णिकार फरमाते हैं कि

प्रमाण १४

जम्हा एवमादिदोसा तम्हा अलं थिरं धुवं धारणिज्जं धारेयव्वं, अववादतो अणलादियावि धरेयव्वा, असिवे गाहा ॥१५९॥ एते असिवादिया मायणभूमिए होज्जा, अंतरा वा, जयणाए गेण्हिज्जंति, का जयणा! इमा-चत्तारि मासे अहाकडं गवेसेज्ज दो मासे अप्पपरिकम्मं बहुपरिकम्मं दिवड्ढंति.

भावार्थः-जिससे प्रथम कहे हुवे दोष हैं उससे समर्थ स्थिर, ध्रुव और लक्षणवाला पात्र धारण करना
चाहिये अनल वगैरह भी धारण करना, -
हेतु " असिवे " की गाथा बताई गई।

यह अशिव, वगैरह भाजन मिलते होवें उस स्थानमें हो, या बीचमें हो, लेकिन यतना पूर्वक ग्रहण करना चाहिये। यतना कौनसी ? याने जयणा, इसको स्पष्ट समझनेके लिये कहना होगा कि, चार मास तक यथाकृतको खोजे, दो महिने तक अल्पपरिकर्म को, और विशेष परिकर्म वाले को डेढ महिने तक.

इस चूर्णीके पाठसे शंकाका समाधान शीघ्र हो जाता है। क्योंकि उपरोक्त कथनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जो अधिकार पात्रके लिये बतलाया है, वे ही अधिकार वस्त्रके लिये भी समझना चाहिये। शंकाकारकी अज्ञानता दिखाके अब पात्र रंगनेमें उत्सर्ग अपवाद मार्ग कौनसा और कहां है, यह बतलाना जरूरी बात है।

देखिये ! निशीथसूत्रके चवदमें उद्देशेके सूत्रके अतिरिक्त, भाष्य गाथा, और चूर्णीका पाठ बतलाते हैं, कि जिसको पढनेसे स्वयमेव सिद्ध हो जायगा कि अपवादमें वस्त्र रंगनेमें किसी तरहका दोष नहींहै.

पाठक ! शंका करनेवाले न मानेंगे और ये प्रश्न करेंगे और पाठ देखने से पहले यह कह देंगे कि, अपवादमें वस्त्रका रंगना यदि सिद्ध भी होजाय, तथापि अपवाद नित्य नहीं होसकता, अपवादका मतलबही कथित् समयानुकूल काम पडने पर करनेका होता है। अतएव इसका भी समाधान करना आवश्यकीय है।

महानुभाव ! अपवाद मार्ग नित्य नहीं होता और कादाचित्क होता है, ऐसा सिद्ध करनेके लिये आपके पास प्रमाण हो तो बतलाना चाहिये। सम्प्रदायके अनुयायी तो अपवादको नित्य अनित्य

नहीं किन्तु काम पड़े और वह अपवादकी कोटीमें गिनने योग्य हो उसे अपवाद मानेंगे। तथापि कितनीक बातें ऐसी हैं कि वे नित्य होकर अपवादमें मानी गई हैं, और उनका किञ्चित् वक्तव्य यहां लिखना प्रासंगिक है।

(१) पर्यूषणा पर्व, अपर्व रूप चतुर्थीमें प्रतिवर्ष किया जाता है, यह क्या उत्सर्ग है? नहीं, उत्सर्गसे तो पंचमी आदि पर्वकी ही करनी चाहिये, अतएव अपवाद सिद्ध हुवा।

(२) आषाढ विशेषकी चउमासी चतुर्दशीके दिन कीजाती है। यह अपवाद ही है। क्योंकि उत्सर्गसे चौमासेकी आज्ञा आषाढ-विशेषकी पूर्णिमा में ही है।

(३) हर दम कपड़ा रखना अपवाद ही है।

(४) झोलीके दूसरी गांठ दी जाती है यह अपवाद ही है।

(५) नित्य चोलपट्टा बांधना भी अपवाद है।

(६) पर्यूषण पर्वमें श्रावकगणको कल्पसूत्र सुनाते हो यह अपवादमें भी नहीं है। क्योंकि चूर्णिकारने तो सिर्फ आनंदपुरमें ही सभामें बांचनेके लिये अपवाद कहा है, और तुम श्रावकों के पास प्रतिवर्ष बांचते हो.

उपरोक्त कथनानुसार वर्तन करते जाना और न्यायमें आजावे तब अपवाद मावधिक बतलाना यह विचारणीय बात है। आप विशेष खोजना करेंगे तो आपको मालूम होगा कि, शास्त्रमें और भी कइ बातें अपवादमें बतलाइ गइ हैं वे हरदम होती हैं। देखिये!, स्थविर

कल्पिकके लिये शास्त्रमें कहे हुवे, वस्त्रादिक, भिक्षा ग्रहण, प्रतिलेखना आदि अनेक अपवाद रूपमें हैं, कि जिनके लिये शास्त्रकारोंने भी हरदम स्थविर कल्पिकको करनेके लिये कहा है। ऐसी हालत में अपवाद सावधिक ही कैसे माना जावे ? अस्तु.

पाठक ! शंका समाधानमें असली मतलब रहजाता है। उपरोक्त कथनानुसार रंग विषय का निशीथ सूत्र, भाष्य और चूर्णिका पाठ बतलाना जरुरी बात है देखिये।

प्रमाण ९५

॥ चोद्दसमो उद्देसओ ॥

जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ (सू० १०) जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेइ करेंतं वा साइज्जइ (सू० ११) जे भिक्खू नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे त्तिकट्टु तेल्लेण वा घएण वा नवणीएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा मक्खंतं वा भिलिंगंतं वा साइज्जइ (सू०१२) लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वलेज्ज वा, उल्लोलंतं वा उव्वलंतं वा साइज्जइ (सू० १३)''सीओदगवियडेण वा जाव उ सिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा (सू० १४) '' बहुदेवसिएणं वा तेल्लेण वा जाव साइज्जइ (१२-१४ बहुदेवसिएण) पधोएज्ज वा (सू० १५-१७) जे भिक्खू दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धेत्तिकट्टु

"जे पत्तए में पडिग्गहे इतिकट्टु एवं दोगम्मा भाणियव्वा, जेसुब्भिगंधे पडिग्गहे लद्धे इति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदग-वियडेण वा (सूत्र १८-२३)

भावार्थ—सूत्रकार भगवान उत्सर्गमार्गकी रीतिसे अपरिकर्म्म पात्रकी मुख्यता गीनकर विधान करते हैं, कि जो साधु रंगीन पात्रको विवर्ण कर डाले, या करनेवालेको भला गिने (१०) जो साधु विवर्ण पात्रको वर्णवाला करे या करनेवालेको अच्छा गिने (११) जो साधु मुझको नया पात्र नहीं मिला है ऐसा विचार कर तेल, घी, मक्खन या चर्बीसे पात्रका म्रक्षण करे या अन्यप्रकारका संस्कार करे और करनेवालेको भला समझे। (१२)फिर लोद्रसे, कल्कसे, चूर्णसे, वर्णसे रंगीन करे, या उद्वर्तित करे या करनेवालेको भला जाने (१३) ठंढे अचित्त पानीसे या गरम पानीसे उच्छोलन या प्रधोवन करे या करने वालेको भला माने (१४) तीन पसलीसे ज्यादा तेल आदिसे म्रक्षण आदि करे ऐसी ले लेना (१५। १७) जो साधु दुर्गंधपात्र मिला, ऐसा समझ कर सुगंधि करे या नया मिला ऐसा गिनकर गंध संस्कार करे, इसी तरह सुगंधि पात्र मिला ऐसा गिनकर संस्कार करे (१८। २३)

महानुभाव! जिन लोगोंने सूत्रार्थ, नियुक्ति, भाष्य और चूर्णिका अर्थ देख लिया है और समझ गये हैं वे [illegible] को शीघ्र समझेंगे। और जिन्होंने सूत्र, चूर्णिका [illegible] किया है वे बारहवें आदि सूत्र में— [illegible] नहीं

" णो पावए मे पडिग्गहे "

इस जगह पर (नो) शब्दको नहीं समझते हैं और उडा देते हैं, ऐसा करनेवालोंको अनभिज्ञ समझना चाहिये. इसके अतिरिक्त भाष्यादि पाठोंसे और भी स्पष्ट हो जावेगा कि जो अधिकार प्रतिपादित किया है वह केवल पुराने पात्रके लिये है। क्योंकि नये पात्र में शोभा होती है, और विशेष संस्कारकी आवश्यकता पुराने पात्रके लिये होती है। और नवीन पात्रके लिये अठारहवेंमें आगेके सूत्रमें स्पष्टीकरण विद्यमान है। तथैव इस जगह पर वर्णके अधिकारसे लज्जित होने वाले महानुभाव बहुधा " सुवण्णेण वा वण्णेण व. " यह दोनोंही पाठ समान होते हुवे भी वर्ण शब्द को ब्राकेट (   ) में रख कर शुद्ध भ्रममें पडते हैं, और दूसरोंको लडाते हैं. लेकिन ऐसा जो करते हैं उनको सोचना चाहिये। इस विषयमें विशेष प्रयत्न करना वृथा है। क्योंकि आगे भाष्य चूर्णिका पाठ सामने आनेवाला है तथापि ध्यान रखिये कि सूत्र में " वण्णमंतं " " वण्णे ण, " इन शब्दोंमें पांचही वर्ण लेखिये हैं, और अपवादसे आज्ञा देंगे तो पांचों ही की आज्ञा आजायगी, अब आगेका प्रमाण पढियेगा।

प्रमाण ९६

पंचण्हं वण्णाणं अण्णतरजुत्तं तु पाद दुव्वण्णं। दुव्वण्णं च सुवण्णं जो कुज्जा आणमादीणि ॥ १६० ॥ वण्णे विवज्जासं पुण जो पवपादे पघोवणादीणि। दुग्गंधं च सुगंधं जो कुज्जा आणमादीणि ॥ १६१ ॥ उण्होदगछगणमट्टियपडारादीणहि

होइ उ विवण्णं । मक्खणकक्कादीहिं उ धूमेण य जायते वण्णो ॥ १६२ ॥ मा णं परो हरिस्सति तेणाहडगंतिसामि मा जाणे। वण्णं कुणति विवण्णं विवण्णहरणं णवरि णत्थि ॥ १६३ ॥ घंसणे हत्थवाघातो तदुब्भवा गंतु संजमे पाणा । धुवणे संपातिमवहो उप्पिलणं चेव भूमिगते ॥ १६४ ॥ तम्हा उ अपरिकम्मे पादमहालद्धपरिहरे भिक्खू । परिभोगमपाउग्गं सपरिकम्मे य बितियपदं ॥ १६५ ॥ वण्णिमविवण्णकरणे विवण्णमंतस्स धण्णकरणे य । जँ उस्सग्गे दोसा कारणे ते चेव जयणाए ॥ १६६ ॥

भावार्थ—पांचोंही रंगमें से कोई भी रंगवाले पात्रको खराब रंगका बना दे, या खराब रंग वाले पात्रको अच्छे रंग वाला बना दे, उसको आज्ञाभंगका दोष लगता है। सोचना चाहिये कि शास्त्रोंमें पात्रके समान ही वस्त्रका अधिकार बताया है और भाष्यकार महाराज स्पष्टीकरण करते हैं कि, पांचों रंगमें से जिस रंगका प्राप्त हुवा हो उसे उसी स्थितिमें रखना चाहिये। तो भिन्न प्रकारके वस्त्र पात्र रखनें वाला आज्ञा भंगसे दूषित गिना जायगा या अन्य प्रकारका रंग होताही नहीं, ऐसा बयान करनेवाला दूषित गिना जाय ? ॥ १६० ॥

नया पात्र नहीं मिला, ऐसा समझकर वर्णका विपर्यास करे प्रक्षालन आदि करे, दुर्गंधादि से सुगंधित बनावे, उसको भी आज्ञादि दोष हैं। लेकिन यहांभी जो दोष बतलाये हैं, [illegible] रकी शोभा

" णो णवए से पडिग्गहे "

इस जगह पर (नो) शब्दको नहीं समझते हैं और उड़ा देते हैं, ऐसा करनेवालोंको अनभिज्ञ समझना चाहिये. इसके अतिरिक्त भाष्यादि पाठोंसे और भी स्पष्ट हो जावेगा कि जो अधिकार प्रतिपादित किया है वह केवल पुराने पात्रके लिये है। क्योंकि नये पात्र में शोभा होती है, और विशेष संस्कारकी आवश्यकता पुराने पात्रके लिये होती है। और नवीन पात्रके लिये अठारहवेंमे आगेके सूत्रमें स्पष्टीकरण विद्यमान है। तथैव इस जगह पर वर्णके अधिकारसे लज्जित होने वाले महानुभाव बहुधा " वुण्णेण वा वण्णेण वा " यह दोनोंही पाठ समान होते हुवे भी वर्ण शब्द को ब्रांकेट ( ) में रख कर खुद भ्रममें पडते हैं, और दूसरोको लडाते हैं. लेकिन ऐसा जो करते हैं उनको सोचना चाहिये। इस विषयमें विशेष प्रयत्न करना वृथा है। क्योंकि आगे भाष्य चूर्णिका पाठ सामने आनेवाला है तथापि ध्यान रखिये कि सूत्र में " वण्णमंतं " " वण्णे ण, " इन शब्दोंमें पांचही वर्ण लेलिये हैं, और अपवादसे आज्ञा देंगे तो पांचों ही की आज्ञा आजायगी, अब आगेका प्रमाण पढियेगा।

प्रमाण ९६

पंचण्हं वण्णाणं अण्णत्तरजुतं तु पाद दुव्वण्णं। दुव्वण्णं च सुवण्णं जो कुज्जा आणमादीणि ॥ १६० ॥ वण्णे विवचासं पुण णो णवपादे पधोवणादीणि। दुग्गंधं च सुगंधं जो कुज्जा आणमादीणि ॥ १६१ ॥ उण्होदगछगणमट्टियछारादीएहिं

होइ उ विवण्णं । मवखणककादीहिं उ धूमेण य जायते वण्णो ॥ १६२ ॥ मा णं परो हरिस्सति तेणाहट्टगंतिसामि मा जाणे । पण्णं कुणति विवण्णं विवण्णहरणं णचरि णत्थि ॥ १६३ ॥ घंसणे हत्थवाघातो तदुब्भवा गंतु संजमे पाणा । धुवणे संपातिमवहो उप्पिलणं चेव भूमिगते ॥ १६४ ॥ तम्हा उ अपरिकम्मे पादमहालद्धपरिहरे भिक्खू । परिभोगमपाउग्गं सपरिकम्मे य बितियपदं ॥ १६५ ॥ वण्णिमविवण्णकरणे विवण्णमंतस्स वण्णकरणे य । जे उस्सग्गे दोसा कारणे ते चेव जयणाए ॥ १६६ ॥

भावार्थ—पांचोंही रंगमें से कोई भी रंगवाले पात्रको खराब रंगका बना दे, या खराब रंग वाले पात्रको अच्छे रंग वाला बना दे, उसको आज्ञाभंगका दोष लगता है। सोचना चाहिये कि शास्त्रोंमें पात्रके समान ही वस्त्रका अधिकार बताया है और भाष्यकार महाराज स्पष्टीकरण करते हैं कि, पांचों रंगों से जिस रंगका पात्र हुआ हो उसे उसी स्थितिमें रखना चाहिये। तो भिन्न प्रकारके वस्त्र पात्र रखनें वाला आज्ञा भंगसे दूषित गिना जायगा या अन्य प्रकारका रंग होताही नहीं, ऐसा बयान करनेवाला दूषित गिना जाय ? ॥ १६० ॥

नया पात्र नहीं मिला, ऐसा समझकर वर्णका विपर्यास करे प्रक्षालन आदि करे, दुर्गंधादि से सुगंधित बनावे, ... दोष है। लेकिन यहांभी जो दोष बतलाये हैं, ... वदानेमें समझना चाहिये ॥ १६१ ॥

उष्ण जल, गोबर, मिट्टी, (गार) क्षार, आदि पदार्थोंसे विवर्ण होता है। और भ्रक्षण, कल्क वगैरहसे या धूमसे भी होता है ॥ १६२ ॥

यह मेरा अच्छा पात्र कोई लेकर न चला जावे, या चोरीसे पात्र हो, उसको उसका स्वामी पहचाने नहीं, ऐसी मलीन धारणासे रंगीनको विवर्ण करे, किंवा विवर्णको रंगीन करे उसमें भी प्रायश्चित्त है। लेकिन विवर्णमें चोरीमें जानेका डर नही है ॥ १६३ ॥

पात्रको पीसते हुवे हाथमें छाला होजाय, या लेपमें जंतु पैदा होवे, और बाहर से आकार गिरजावे, उनकी विराधना हो तो संयम में बाधकरूप है। और विशेष धोने से सम्पातिम जीवोंका नाश हो और उसके मेलका पानी पाटनेमें पृथिवीके उपर जो कुंथवे आदि और नीलन फूलन वगैरह होवे उनका नाश हो या पानी से बहजाय, यह तमाम क्रियाएं दूषित रूपमें ओघनिर्युक्तिकारने बताई, उसी तरह पात्र रंगनेमें जो दोष एक पक्षसे बताया था वैसाही यहां भाष्यकारने फरमाया है। इस हकीकतमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि, " पात्र का रंग क्यों नहीं छोडना? " लेकिन पात्रका रंग अपवादसे किया जाता है और वह यतना पूर्वक करनेमें दोष नहीं है ॥ १६४ ॥

इसीसे परिकर्म किये बिना जो पात्र मिले वैसाही साधुको काममें लेना, योग्य हो तो उसका परिकर्म करना, वह अपवादसे समझना चाहिये। रंगीनको विवर्ण करनेमें, किंवा विवर्णको रंगीन करनेमें उत्सर्ग मार्गमें जो दोष बतलाये हैं, वैसी यतना पूर्वक करने अपवाद मार्गमें गुण रूप होते हैं ॥ १६५ ॥

देखिये! भाष्यकार महाराज ने वस्त्र पात्रको रंग लगाने अशिवादि कारण नहीं बताये, लेकिन सामान्य रूपमें जो दोष आते थे वेही अपवाद मार्गमें दूर कर दिये. अब भी जो महानुभाव रंगीन वस्त्र पात्रके लिये अशिवादि कारण मानते हैं, उनको सोचना चाहिये कि वे जो पात्र रंगीन बनाते हैं. सो क्या देवके उपद्रवादिमें बनाते हैं. या भोजन सामग्रित्य नहीं मिलता, अथवा शासनसभाधारियों की तर्फसे कोई द्वेष उत्पन्न हुआ है, या चौरादि का भय पैदा हुआ, या बिमार रहते हैं। क्या बात है? जो आप रंगीन बनाते हैं. उपरोक्त कारणोंमें से एकभी कारण मालूम नहीं होता तथापि पात्रको रंगने की वृथा प्रचलित है, और अपवादसे समझना चाहिये.

पाठक! ओघनिर्युक्ति आदिके पाठमी पात्रको रंगीन बनानेमें अशिवादि कारण नहीं बतलाने, यह अशिवादिककी इत्यादि भी हटव दिये हृदयसे ही उत्पन्न हुए हैं ऐसा अनुमान होता है।

प्रमाण १७

पढमपादेण पण्णविपद्मागगुणं गहियं. बितियपादेण णो एवं पादं लद्धमिति धोवणादि करेज्ज एयं गुणं गहियं. ततिय-पाएण णो दुब्भिगंधं पादं लद्धमिति सीतोदगादीहिं धोवइ. एवं गुणं गहियं, एग भद्दबाहुसामिकया गाहा, तत्थेते तिण्णिवि गुणा फासिपव्वा, कहं गुण [illegible] ॥ १६२ ॥ उण्होदगेण गुणो [illegible] गति, उण्हाेड. राणं विवण्णं भवति, से [illegible] [illegible] आलित्त-

करेज्ज, पाडग्ग वा अधिकं अज्झोयरातो वण्णइं कीरतित्ति एवं वा करेज्ज ॥ सुत्तं जे भिक्खू णो णवगं पादं लद्धमिति काउं सीतोदगवियडेण वा इच्चादि, इमो सुत्तत्थो, एमेव य गाहा ॥ १६८ ॥ णो णवं जुण्णं, सीयमुदगं सीतोदगं असावियं वियडंति अपगतजीवे उसिणोदगे तावितं तं चेव पवगयजीवं एक्कंसि धोवणं उच्छोलणं, पुणो २ धोवणं पधोवणं, बितियसुत्ते एमेवरया, णवरं बहुदेवसितेहिं सीयोदगोसिणोदेहिं वत्तव्वं, ततियसुत्ते कक्को सो दव्वसंजोगेण वा भवति, लोद्धे कक्को तस्स छट्ठी लोद्धं भण्णति, वण्णो पुण हिंगुलुगादि तहमाइतो, चुण्णो पुण गंधुणिगादिकता चुण्णीकता, एएहिं एक्कंसि आघंसणं पुणो २ पघंसणं, चउत्थसुत्ते कक्कादिएहिं चेव बहुदेवसिएहिं सेसं तं चेव, एयस्स पुण अणयस्स पादस्स एते धोवणादिया पगारा करेति, वरं मे णवागारं भविस्सतित्ति, जहा अणवपादे चउरो सुत्ता भणिता, तहा दुग्गंधेवि चउरो सुत्ता भाणियव्वा, णवरं तत्थ दुग्गंधं मे पातं सुगंधं भविस्सतित्ति उच्छोलणगाहा ॥ १६९।१७० ॥ अणवपाए जे चउरो सुत्ता तेसु जे आदिल्ला दो सुत्ता तेसु उच्छोलणपधोवणा भण्णति, पच्छिमा पुण जे दो सुत्ता तेसु आघंसणपघंसणादि भण्णति, सेसं कंठं । देसो णामं गाहा ॥ १७१ ॥ सुत्ते बहुदेसेण वा पातो बहुदेवसिलेण वा एगा पगती दो वा तिण्णि वा पसती

तिण्हं परेण बहुदेसो भण्णति, आणाह

तेण एत्थ पगाराति संवासितं तं

रिम   मे च

इमे दोसा, घंसणे गाहा ॥ १७२ ॥ पूर्ववत्कण्ठ्या, जम्हा एते दोसा तम्हा उ गाहा ॥ १७३ ॥ पूर्ववत् कण्ठ्या. इमो बहुदेवसियस्स अववातो अभियोग्गगाहा ॥ अभियोगेत्ति पातं वसीकरणजोगेण भावितं बहुरएण वा पत्थं अचत्थमलिनमित्यर्थः, मज्जादुर्गंधदव्वेण वा भावितं दुग्गंधं, तं एवमादिएहिं कारणेहिं बहुदेवासिएण वा कक्केण वा धोवति वा आघंसिज्जति वा, मा मज्जादिगंधेण उड्डाहो भविस्सतीत्यर्थः,

भावार्थः—पाठक गण ! प्रथम पादमें तो वर्ण विपर्यासका लिया, और द्वितीय पादमें नया पात्र नहीं मिला. इसमें आदि करनेका सूत्र लिया, तीसरे पादमें सुगंधि पात्र नहीं कारण "शीतउदक" आदिसे धोवे यह सूत्र लिया. यह महात्मा श्री भद्रबाहु स्वामी रचित है । इस गाथामें तीन सूत्र लिये गये ॥ १६१ ॥

वर्ण विपर्यास किस तरह होवे ? इस प्रश्नके पडेगा कि, गरम पानीसे बारंबार धोवे और गोबर करनेसे विवर्ण होता है । और तैलादिकसे मालिखदीर बीज कल्कादिसे बारंबार धोना और स्थानमें रखना इत्यादिक प्रकारसे विवर्णका वर्ण हो

वर्णवालेका विवर्ण क्यों करें ? तो उत्तरमें वर्णसे चमकीला सुहावना होनेके कारण यह न चला जाय, इस कारणसे विवर्ण बनावे, या

गामी कहलायगा, अतएव पात्रकी तरह श्वेत वस्त्रका रंग पलटना शासन हितके लिये मान्य होता है ॥

वर्णका विपर्यास करनेमें उत्सर्ग मार्गमें जो दोष बतलाये हैं, उनहीको कारणसर रंगीन वस्त्रको अन्य कोई काममें न लेजाय ऐसा समझ कर विवर्ण यतना पूर्वक करे तो वह शुद्ध मान गिना जाता है। इस जगह भी चूर्णिकारने कारणसर यतनासे करे तो शुद्धि बतलाई है। लेकिन सूत्र विरोध नहीं बतलाया है। आगे फिर चूर्णिकार ज्ञान और गच्छकी वृद्धिके लिये—

नाणगच्छवुड्ढिनिमित्तं

ऐसा कहकर अपवाद के कारण ज्ञान और गच्छकी वृद्धि दिखाते हैं, सो हे महानुभाव! इस जगह हठवादियोंके कथनानुसार, अशिवादि पांच कारणका तो अंतरधान हो जाता है, अस्तु. आगे फिर सूत्रार्थके विषयमें चूर्णिकारका कथन देखिये!

" जो साधु नया पात्र प्राप्त न होनेके कारण शीत पाणुपाणी इत्यादि, यानि इस सूत्रसे यह सिद्ध किया है कि, नया पात्र नहीं अर्थात् पुराना, शीतगत, अर्थात् बिना गरम किया हुआ पानी 'वियड' यानि अचित्त, उष्ण, यानि गरम किया हुआ आंवल पानी, और एक दफा धोना उसका नाम 'उच्छोलन' वारवार धोना उसका नाम 'पधोवन' यह प्रथम सूत्रका अर्थ है ॥

इस स्थान पर प्रतिवादी कथन करते हैं कि " शीतोदक वियडसे धोना और अचित्त पानी लेना "

यह अर्थ सूत्रसे विरुद्ध है। जिन महानुभावोंको सूत्रोंमें श्रद्धा है, वे कदापि ऐसा प्रतिपादित नहीं कर सके. अगर " विकृत " शब्दकी व्याख्याको देख लेवे और हठवादको तिलांजली देवे तो अवश्य समझ में आजाता, इसके अतिरिक्त दूसरे सूत्रका भी यही अर्थ है। लेकिन तीन पसलीसे ज्यादे पानी लेनेकी बात है तीसरे सूत्रमें जो कल्क कहा है। वह द्रव्यके संयोग से होता है "लोद्र" शब्दसे लोद्र वृक्षकी छाल लेवे. "वर्ण" शब्दसे तेलमे मिश्रित हिंगुल आदि पदार्थ लेना, 'चूर्ण' शब्दसे गन्धद्रव्यादिके फलका चूरा लेना. और इनसे पात्रोंको एक बार घीसना जिसको 'आघर्षण' कहते हैं। और बारंबार घीसे उसका नाम 'प्रघर्षण' कहते हैं। चौथे सूत्रमें तीन पसली (चुलु) से ज्यादे कल्कादिक लेना, शेष उतनाही लेना और पुराने पात्रको धोने का कारण यह है कि मेरा यह पात्र नयेके समान रहेगा तो अच्छा है। जैसे पुराने पात्रके लिये चौथा सूत्र प्रतिपादन किया इसी तरह दुर्गंध विषयक भी चार सूत्र लेना, लेकिन यहां इतना विशेष समझना कि दुर्गंध पात्र सुगंध मय होजावे।

पुराने पात्रके लिये जो चार सूत्र फरमाये हैं। इनमें प्रथमके दो सूत्रमें तो 'उच्छोलन' प्रधोवनादि, का वर्णन किया, और पिछले दो सूत्रोंमें 'आघर्षण, प्रघर्षण' का वर्णन फरमाया है, बाकीके सुगम हैं। और सूत्रमें बहु 'देश' या ' [illegible] य' ऐसा पाठ है, सो समझना चाहिये कि १।२।३। [illegible] कहा जाता है, और तीनसे ज्यादे संख्याको [illegible] कहते

और संवासित अनाहारादिक कल्कोंसे जो संवासित होना है, उसको बहुदेशिक कहते हैं। अनाहारी लेनेका मतलब यहां ' चउलघु प्रायश्चित्त है, लेकिन आहारमें चउ गुरु होता है। इसके सिवाय घर्षणादिका दोष भाष्यकार बताते हैं, और उत्सर्ग पक्षमें घर्षणादिकी मनाइ की गइ है। और बहुदेशिक, अपवाद, अभियोग, गाथामें यह सिद्ध किया है कि वशीकरणसे भावित पात्र अभियोग है। बहुत मैला बहुत मलीन मज्जादि दुर्गंधसे फैली हुइ दु पात्र होवे तो इत्यादिक कारणों से बहुदेशिक कल्कादिसे घ धीसे, क्योंकि मज्जादि गंधसे उद्दाह नहीं होता।

इस जगह पर पांचही प्रकारके रंगसे उद्वर्तन घीसनेको चूर्णिकार अपवादसे फर्माते हैं। तो पाठक श्वेताम्बरी इस जगह पर क्या करेंगे?, महानुभाव ! करना सभ्यताका काम है, पीले वस्त्र धारण आज्ञा बतलाते हैं कि श्वेत वस्त्रधारियोंकी शासनरक्षक दीर्घदर्शी महानुभावोंने यह प्रथा जारी की, सो उसकी सविस्तर हकीकतसे तथा उत्सर्ग और अपवादकी क्या मर्यादा है भाष्यका पाठ बतलाया जाता है सो ध्यान

प्रमाण ९८

निशीथ भाष्य

णवि किंचि अणुण्णाय पडिसिद्धं वा।
तंम आणा कज्ज सच्चेण होयव्वं।

ज्जति, एवं जो जो साधुस्स दोसणिरोधकम्मखवणो किरियाजोगो सो सो सव्वो मोक्खावादो, इमो दिट्ठंतो-रोगावत्थासु समणं व, रोगावत्था रोगप्रकाराः, तेसिं रोगाणं प्रशमनं अत्थं पडिसिज्झति जेण य प्रशमयन्ति तं तस्स दिज्जति, अथवा कस्सइ रोगिस्स णिसेहो कज्जति, कस्सइ पुण तमेव अणुण्णवति, एवं कम्मरोगक्खवणेवि समत्थस्स अकप्पपडिसेहो कज्जति, असमत्थस्स पुण तमेव अणुण्णवति ।

इस पाठ का भावार्थ भाष्य के भावार्थ तुल्य है, अतएव यहां नहीं लिखा गया, अस्तु ।

अगीतार्थ को ही अपवाद पद की आज्ञा नहीं है देखो भाष्य,

प्रमाण १००

अगीतस्स ण कप्पइ तिविधं जयणं तु सो ण जाणाइ ।
अणुण्णवणा य जयणं सपक्खपरपक्खजयणं च ॥ १५७ ॥

यानें अगीतार्थ त्रिविध यतनाको नहीं जाने अनुज्ञा भी जाने स्वपरपक्ष यतनाको न जाने इससे उसको अपवादपद नहीं कल्पता है.

इन प्रमाणों के सिवाय भी जीत कल्प पंचकल्पादिक के प्रमाण हैं लेकिन विस्तार होजाने के कारण नहीं दिये हैं, इति

इति समयर्ण सिद्धिः संपूर्णा

जंति, एवं जो जो साधुस्स दोसणिरोधकम्मखवणो किरियाजोगो सो सो सव्वो मोक्खोवाओ, इमो दिट्ठंतो-रोगावत्थासु समणं व. रोगावत्था रोगप्रकाराः, तेसिं रोगाणं प्रशमनं अपत्थं पडिसिज्झति जेण य प्रशमयन्ति तं तस्स दिज्जति, अथवा कस्सइ रोगिस्स णिसेहो कज्जति, कस्सइ पुण तमेव अणुण्णवति, एवं कम्मरोगक्खवणेवि समत्थस्स अकप्पपडिसेहो कज्जति. असंथरंतस्स पुण तमेव अणुण्णवति ।

इस पाठ का भावार्थ भाष्य के भावार्थ तुल्य है, अतएव यहां नहीं लिखा गया, अस्तु ।

अगीतार्थ को ही अपवाद पद की आज्ञा नहीं है देखो भाष्य,

प्रमाण १००

अगीयत्थस्स न कप्पइ तिविहं जयणं तु सो न जाणाइ ।
अणुन्नवणा य जयणं सपक्खपरपक्खजयणं च ॥ १५७ ॥

क्योंकि अगीतार्थ त्रिविध यतनाको नहीं जाने अनुज्ञा व स्वपक्ष परपक्ष यतनाको न जाने इससे उसको अपवादपद नहीं कल्पता है.

इन प्रमाणों के सिवाय भी और बहुत निशीथचूर्ण्यादिक के प्रमाण हैं लेकिन विस्तार होजाने के कारण नहीं दिये हैं. इति

इति सम्यक्त्व सिद्धिः संपूर्णा